नि वे द न

पूज्य विनोबाजी की भूदान-पदयात्रा के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर 'भूदान-गंगा' रूपी संकलन तैयार किये गये हैं। संकलन के काम में पूज्य विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत बह रही है।

'भूदान-गंगा' के सात खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खण्ड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् '५२ के अन्त तक का काल लिया गया है। दूसरे खण्ड में बिहार के शेष दो वर्षों का यानी सन् '५३ और '५४ का काल लिया गया है। तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पदयात्रा का काल यानी जनवरी '५५ से सितम्बर '५५ तक का काल लिया गया है। चौथे खण्ड में उत्कल के बाद की आन्ध्र और तमिलनाड में कांचीपुरम्-सम्मेलन तक की यात्रा यानी अक्तूबर '५५ से ४ जून '५६ तक का काल लिया गया है। पाँचवें खण्ड में कांचीपुरम्-सम्मेलन के बाद की तमिलनाड-यात्रा का ता० ३१-१०-'५६ तक का काल लिया गया है। छठे खण्ड में कालडी-सम्मेलन से पहले तक का यानी ७-५-'५७ तक का काल लिया गया है। कालडी-सम्मेलन के समय पूज्य विनोबाजी के जो विविध भाषण हुए थे, वे सब कालडी-सम्मेलन रिपोर्ट पुस्तक में संकलित हैं। सातवें खण्ड में कालडी-सम्मेलन के बाद की केरल-यात्रा तथा कर्नाटक प्रदेश के ५-९ पड़ावों की यानी ११ अक्तूबर '५७ तक की यात्रा का काल लिया गया है।

इस आठवें खण्ड में ता० १५ अक्तूबर '५७ से २१ मार्च '५८ तक की कर्नाटक-पदयात्रा का समय सम्मिलित किया गया है।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आन्दोलन का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें पुनरुक्तियाँ भी दीखेंगी किन्तु रस-हानि न हो इस दृष्टि से उन्हें चयन किया है। संकलन का आकार अधिक न बढ़ने पाये इस ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि इसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना चाहिए। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १ कार्यकर्ता-पाथेय, २ साहित्यिकों से ३ संपत्तिदान-यज्ञ ४ शिक्षण-विचार ५ ग्राम-दान ६ मोहब्बत का पैगाम ७ नगर-अभियान ८ प्रेरणा-प्रवाह, ९ कार्यकर्ता क्या करें १ स्त्री-शक्ति, ११ शान्ति-सेना आदि पुस्तकों को 'भूदान-गंगा' का पूरक माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त रहा है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

●

कर्नाटक-पदयात्रा

भूदान - गंगा

(अष्टम खण्ड)

ग्रामदान की वैचारिक और आचारिक योजना १ :

स्वराज्य प्राप्ति के बाद इस देश की जनता को बहुत पीड़ा सहन करनी पड़ी। पचास लाख लोग पाकिस्तान से हिन्दुस्तान में आये और करीब इतने ही हिन्दुस्तान से पाकिस्तान गये। इससे बहुत बड़ी समस्या खड़ी हुई। परस्पर द्वेष बढ़ा। किसीका किसी पर विश्वास नहीं रहा। उस हालत में सर्वोदय तो कहीं छिप गया, सर्वनाश के ही लक्षण दीखने लगे।

सर्वोदय के साधकों की दशा

किसी तरह देश की परिस्थिति सँभली। उसके बाद देश में योजना चली। उस योजना में सर्वोदय का कहीं पता नहीं चला। सर्वोदय के जो चंद साधक थे वे भी निराशा में डूब गये। वे चरखा तो जरूर चलाते थे परन्तु वह भी समझ बैठे थे कि अपनी मृत्यु के साथ-साथ चरखा भी दहन के ही काम आयेगा। इसमें से कुछ निकलेगा नहीं। अब दुनिया में चरखा नहीं चलेगा, मिल चलेगी। जो साधक नहीं थे, उन्होंने चरखा चलाना छोड़ दिया। इस तरह सर्वोदय निराशा में पहुँच गया था। किन्तु इस शब्द को लोगों ने उठा लिया। कहीं 'सर्वोदय होटल' खुलने लगे तो कहीं 'सर्वोदय स्टोर'। यानी सर्वोदय बहुत अच्छा है और यह विचार भी कबूल है, ऐसा लोगों ने मान लिया। परन्तु साथ-साथ यह भी निश्चय कर लिया कि यह अव्यवहार्य है। इस कारण सर्वोदयवादियों की दशा बड़ी दयनीय हो गयी।

भूदान-यज्ञ का जन्म

सर्वोदय की सिद्धि कहाँ से प्रारम्भ होगी, इसके लिए हमारी खोज जारी थी। भगवान् की कृपा से तेलंगाना में 'भूदान-यज्ञ' का जन्म हुआ। इस आन्दोलन से सर्वोदय की अहिंसा की पद्धति से कुछ न कुछ काम बन सकता है, इसका थोड़ा दर्शन हुआ। सर्वोदय अच्छा विचार है, इसमें किसीको संदेह नहीं था, परन्तु व्यावहारिक है या नहीं, इस बारे में संदेह था। वह संदेह भूदान-आन्दोलन के कारण कम हुआ। इससे सर्वोदय के साथियों की कमर मजबूत हुई। जमीन मिलने लगी। भूदान का काम बढ़ते-बढ़ते समाधान तक पहुँच गया।

भारतभर में भूदान का काम करने के लिए जिले-जिले में भूदान-समिति थी। हिन्दुस्तान के १ जिलों में से करीब ९५ जिलों में भूदान-समितियाँ काम कर रही थीं। उनके लिए गांधी निधि से कुछ मदद भी मिलती थी। गांधी निधि का उसमें बहुत सुन्दर उपयोग होता था। गांधीजी के स्मरण में वह निधि थी और गांधीजी के विचारों का प्रचार जितना अच्छी तरह इस ढंग से हो सकता है, उतना और किसी तरीके से नहीं हो सकता। इस बात को तमाम नेता महसूस करते थे और गांधी निधिवाले बड़ी खुशी से भूदान के लिए पैसा देते थे।

तन्त्र-मुक्ति का निश्चय

समाधान होने के बाद हमें लगा कि अब और एक क्रांतिकारक कदम उठाना चाहिए। इसलिए भूदान के लिए जो गांधी निधि से सहायता ली जाती थी, वह हमने बन्द कर दी। सारी भूदान-समितियाँ तोड़ डालीं। कोई भी पार्टी व्यापक बनती है, तो अपना संगठन और मजबूत करना चाहती है, परन्तु हमने उससे बिलकुल उल्टी प्रक्रिया चलायी। कल्पना के विकास का इतिहास लिखनेवाला भविष्य का इतिहासकार इस घटना को बहुत महत्त्व देगा। यही वास्तव में इतिहास है, जिसे मानव की कल्पना के क्रमिक विकास के सम्बन्ध में बताया जाता है।

हमने यह सारा तंत्र क्यों तोड़ा ! इसलिए कि संस्था से साधारण सेवा का काम हो सकता है, संघ बन सकते हैं, परन्तु जन-समाज में क्रांति नहीं लायी जा सकती। क्रांतियाँ मौलिक होती हैं, तांत्रिक नहीं।

समितियाँ टूटने का परिणाम

भूदान-समितियाँ टूटने का परिणाम दोनों तरह का हुआ। कुछ प्रांतों में तो जहाँ पहले ४-५ कार्यकर्ता ही थे, वहाँ सैकड़ों कार्यकर्ता हो गये और कुछ प्रांतों में जहाँ पहले ४-५ कार्यकर्ता थे, वे भी गिर गये। हमने दोनों परिणामों की कल्पना कर रखी थी। समितियाँ टूटने के बाद कुल हिन्दुस्तान का काम गिर जाता तो भी हमें यही समझना कि हमने जो कदम उठाया सही है। क्योंकि यह एक खास है कि क्रांतियाँ कभी संस्थाओं के जरिये नहीं होतीं। संस्था का एक ढाँचा होता है, एक अनुशासन की पद्धति होती है, उसके अंदर रहकर ही काम किया और लिया जाता है। ऐसा करने से बुद्धि स्वातंत्र्य नहीं रहता।

क्रान्ति हो गयी

भूदान में एक के बाद एक अद्भुत घटना हो रही है। भूदान के बाद ग्रामदान हुए। ग्रामदान की घटना के बाद भूदान-समितियाँ टूटीं और वे समितियाँ टूटने के बाद भी ग्रामदान बढ़ रहे हैं। लोग हमसे पूछते हैं कि बाबा, आप तो '५७ में क्रांति होने की बात करते थे, तो वह हुई क्यों नहीं ! हम उनसे कहते हैं कि क्या आप देखते नहीं कि क्रांति हो चुकी है ? मैसूर में हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष के चोटी के नेताओं ने ग्रामदान का काम उठाने का आदेश दिया और ग्रामदान के विचार को मान्य किया, यहाँ वैचारिक क्रांति हुई या नहीं ! क्रांति हमारे साथ आ रही है। पहले हम उसके पीछे-पीछे जाते थे, उसे पकड़ना चाहते थे, अब वह हमारी पकड़ में आ गयी है। अब कार्यकर्ताओं को नम्र हो जाना चाहिए। उनके मुँह से मधुर वाणी ही निकलनी चाहिए। मैंने कालड़ी सम्मेलन में कहा था

करने की भावना से करें। ऐसी सहकारी बनानी है या नहीं यह विषय गौण है। ग्रामदान के हर गाँव में एक जैसा प्रयोग नहीं चलेगा। सभी जगह भिन्न भिन्न प्रयोग होंगे। किस प्रकार के प्रयोग से ज्यादा लाभ होता है, यह देखने की बात है। हम चाहते हैं कि लोग अलग न रहें। सभी मिल-जुल कर काम करें, तो अच्छा है। परन्तु यह भी पूर्ण विचार और स्वतंत्र बुद्धि से करने की बात है। इसमें कोई दबाव नहीं है।

ग्रामदान की आधार-योजना

हमने भूदान समितियाँ तोड़ डालीं। फिर भी हर जिले के लिए निवेदक के तौर पर एक एक मनुष्य रहा है। जिले में क्या चल रहा है, इस विषय में वह सर्व-सेवा संघ को जानकारी देगा। वह अकेला शख्स एक जिले में क्या करेगा! कुछ लोगों के पास प्रेम की तासीर जमायेगा और कभी यदि कुछ कटु वचन बोल देगा तो काम बिगाड़ भी देगा। इसलिए इस काम को उसका निजी काम नहीं समझना चाहिए। यह सबका काम है। सभी नेताओं ने इस काम को उठाने का आदेश दिया है इसलिए अब यह आन्दोलन सबके आधार पर है। देश की इज्जत इस आन्दोलन के साथ जुड़ी हुई है, यह समझकर सब प्रकार के भेद भावों को छोड़ सभी लोगों को यह काम उठा लेना चाहिए, यही हमारी व्यापक आधार योजना है।

अब यह बाबा का काम नहीं है, आपका काम है। अब तक बाबा के काम में आप थोड़ा मदद करते थे, अब आप बाबा की मदद लें। नम्मल्वार का एक वचन है "मैं तेरे दास के दास का दास हूँ।" यही विनोबा की हैसियत है। विनोबा आपकी चरण सेवा के लिए तैयार है। इसको सेवा दें और आप यह काम उठा लें।

ग्राम-स्वराज्य के लिए सेवा-सेना

ग्रामदान के बाद ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करने का काम आता है। यह काम आप सबको करना है। इसमें प्रथम जिम्मेदारी गाँव की है। दाता व्यापारी

सारी कमीशन, कम्युनिटी प्रोजेक्ट आदि सभी इस जिम्मेवारी को समझें। इससे भारत मजबूत होगा। देश में ग्रामदान से नैतिक हवा निर्माण हुई है, तो उसे टिकाये रखना आपका काम है। इसके लिए सतत लोगों के पास जाकर समझाने वालों की और सेवा करनेवालों की एक सेना खड़ी होनी चाहिए। उसे हमने सेवा-सेना का नाम दिया है। बैंगलोर शहर की दस लाख जन-संख्या के लिए हजार मनुष्यों के पीछे एक एक सेवक के हिसाब से २ सेवक चाहिए। वे सेवक लोगों के घर जायेंगे उन्हें साहित्य पहुँचायेंगे, उनके दुःख जानेंगे और दुःख निवारण की कोशिश भी करेंगे। इस तरह की निरन्तर सेवा की योजना सारे भारत में होने से ही ग्रामदान आदि व्यापक होगी स्थिर होगी।

बैंगलोर
१५-१०-५

कार्यकर्ता निष्काम, निष्पक्ष और अनुरागी बनें : ५

बैंगलोर शहर के सामने हमने जो बात रखी वह बहुत बड़ी है। सारे शहर के लिए एक सेवा-सेना खड़ी करने के बारे में कभी सोचा नहीं गया था। अब यदि इस प्रकार का काम होगा तो वहाँ काम करनेवाले कार्यकर्ताओं पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ जाती है। आपका दिल प्रेम से भरा होगा तो आप १ से और १ से १ बन जायेंगे। अगर यदि आपके दिल में प्रेम की कमी होगी तो आप जितने हैं, उतने भी नहीं रह पायेंगे।

निष्काम सेवा की योजना

यहां निष्काम सेवा का काम करना है। इस समय देश में जितना भी काम चल रहा है, सकाम है। निष्काम और निरहंकार कर्म अत्यन्त दुर्लभ हो गया है। इसीलिए लोग मेरे सामने यह कहते हैं कि आपकी योजना तो ठीक है, परन्तु ऐसे निष्काम सेवक कहाँ मिलेंगे? सम्पत्तिदान, भूदान और ग्रामदान मिलना आसान है, लेकिन निष्काम सेवक मिलना कठिन है।

हमें पक्षरहित होकर काम करना है। हममें से कुछ अपने को पक्षहीन मानते हैं परन्तु वे पक्षों के झगड़ों में दिलचस्पी लेते हैं। इससे उनका पूरे अर्थ में निष्पक्ष होना बनता नहीं। निष्पक्ष होने के लिए शास्त्रों में जिसे 'उपेक्षा' कहा है उसकी बहुत जरूरत है। हाथी अपने रास्ते से जा रहा है। कोई उस पर पुष्प प्रहार करे, तब भी वह उधर ध्यान नहीं देता। इसी तरह पक्षों के इन झगड़ों का, जो कि अज्ञान के परिणाम हैं, मन के साथ तनिक भी स्पर्श नहीं होने देना चाहिए।

आज जगह जगह अनुराग की कमी दिखाई पड़ती है। कभी किसी महान् नेता के साथ काम करने से अनुराग पैदा होता है, कभी औद्योगिक सम्बन्धों के कारण अनुराग पैदा होता है तो कभी किसी काम में लग जाने से उस काम के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। कार्यकर्ताओं के लिए जरूरी है कि उनमें कार्य के प्रति अनुराग हो यानी उनमें भक्ति भाव निष्ठा होनी चाहिए, जो अनुराग के लिए प्रेरक बने।

मैं हँसी से नहीं घबराता

हमने कहा है ७ हजार शान्ति सैनिकों की माँग की है। इतने शान्ति सैनिक हमें नहीं मिले, तो हम हास्यास्पद बन जाते हैं। हमें ऐसा हास्यास्पद बनना अच्छा लगता है। हास्य भी एक रस है। वह रस भी अगर लोगों को मिलता है तो अच्छा ही है। हम इस तरह के गणित करके जो आँकड़े रखते हैं वे इस लिए कि हमें कहाँ पहुँचना है यह ध्यान में आ जाय।

हमने ५ करोड़ एकड़ जमीन की माँग की थी। लोग पूछते हैं कि पच्चीस लाख एकड़ जमीन ही आपको प्राप्त हुई। अतः ? यानी हमने स्वयं को हास्यास्पद बना लिया। अगर हम २५ लाख एकड़ जमीन हासिल करने की ही बात करते, तो उससे भी ज्यादा जमीन मिल जाती। किन्तु हमने ५ करोड़ एकड़ का नाम लिया। जो लोग हमारी हँसी उड़ाते हैं वे नहीं समझते कि इस देश में किस ढंग से चलना है। 'यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।' भूमा (व्यापकता) में सुख है अल्प में नहीं। हम अल्पसंख्या दीनमनोभाव और सामने

करें। ज्ञानी तो आयें ही, पर मूरख भी साथ-साथ आयें, तो हम उनका त्याग नहीं करेंगे। हम उन्हें भी तालीम देंगे। इस प्रकार एक तरफ श्रद्धा से आये हुए मूर्खों को तालीम देकर तैयार करेंगे और दूसरी तरफ ज्ञानियों को खींचने की कोशिश करेंगे।

बैंगलोर   —कार्यकर्ताओं के बीच
१२-१-६०

सर्वोदयवाले क्या करें ? : ३

ग्रामदान में क्या संरक्षण की शक्ति है ? यह एक सवाल है, जो लोगों के मन में उठता है और हमारे मन में भी उठता है। करीब डेढ़ साल से हम इस बारे में सोच रहे हैं। उड़ीसा में काफी काम हुआ। वहाँ बहनें भी बारिश के दिनों में दूर-दूर जंगलों में जाकर ग्रामदान का काम करती थीं। डेढ़ सौ कार्यकर्ता काम करते गये, इससे हजारों ग्रामदान हुए। थोड़े दिनों बाद राज्य पुनस्संगठन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उड़ीसा में दंगे हुए और गोलियाँ चलीं। दूसरे स्थानों पर भी ऐसा ही हुआ। उस समय हमने कहा था कि भूदान-ग्रामदान आन्दोलन निष्फल हुआ। हम बहुत सोच में पड़े कि इतना नैतिक वातावरण होने पर भी उसमें यह सामर्थ्य नहीं रहा कि देश में शान्ति रखे। शान्ति और रक्षण दो प्रकार का होता है : आन्तरिक शान्ति और आन्तरिक रक्षण तथा बाहर के आक्रमणों से रक्षण और शान्ति। देश का और समाज का दोनों प्रकार का रक्षण चाहिए। आज बाहर के आक्रमण का बहुत डर दुनिया को लगी है। इस पर भी लोग भाषण करते हैं और चर्चा करते हैं। इन दिनों जहाँ किसी देश का दूसरे देश पर आक्रमण होता है, वहाँ विश्व-युद्ध की तैयारी होती है। उस हालत में कौन, किसका और क्या बचाव करेगा ? फिर भी उस प्रकार के बारे में विचार करना आगे की बात है। कम-से-कम देश के आन्तरिक रक्षण और शान्ति की भावना हम कर सकें, यह शक्ति सर्वोदय में होनी चाहिए।

सर्वोदयवाले हिम्मत करें

सर्वोदय यानी कोई पंथ या जमात नहीं है। जिसका मन ही सर्वोदय विचार का समान मौका मिले और सबकी प्रतिष्ठा हो, ऐसा जो मानते हैं, वे सभी सर्वोदयवाले हैं। हिन्दुस्तान के लोग सर्वोदय में विश्वास रखते हैं, इसलिए अब पाकिस्तान के साथ झगड़े का परिहार अहिंसा से करने के लिए आगे आना होगा।

हमारा तत्त्वज्ञान हम आत्मा की अमरता सिखाता है और बताता है कि हम शरीर से भिन्न हैं। इस हालत में क्यों नाहक डर रखा जाय? लड़ाई होती है तो क्या शहीद नहीं होते? लाखों लोग मारे जाते हैं, लेकिन हिम्मतवान बने रहते हैं। लड़ने के लिए भी धैर्य की जरूरत होती है। हाथ में तलवार लेकर धैर्य रखने के बजाय तलवार न लेकर धैर्य रखने में कौन बड़ी बात है? हमारे निःशस्त्र बनने से सामनेवाला भी निःशस्त्र बनेगा। अगर एक देश अहिंसा की हिम्मत करता है, तो दूसरा देश भी हिंसा छोड़ता है। यह सारी हिम्मत सर्वोदयवालों को करनी होगी। इसीलिए जहाँ दंगे हों, वहाँ शान्ति स्थापित करने के लिए हमें मर मिटने के लिए तैयार होना चाहिए।

शान्ति-सेना और मिलिटरी में अन्तर

शान्ति-सेना मिलिटरी के समान नहीं है कि जहाँ कहीं दंगे हों, वहाँ उसे भेज दिया जाय। जिसने पहले कोई सेवा न की होगी, लोक-हृदय के साथ सम्बन्ध न जोड़ा होगा, जनता का प्रेम न पाया होगा, वह ठीक मौके पर लोगों को शान्त रखने के लिए नहीं जा सकता। सेना के लिए तो जितना अपरिचित क्षेत्र हो, उतना अच्छा माना जाता है। अपरिचित मनुष्यों के साथ द्वेष हो सकता है। अंग्रेजों ने यही किया। उन्होंने मिलिटरी के दो विभाग किये, उत्तरी और दक्षिणी। दक्षिण में कहीं दंगा होता था, तो उत्तर की पल्टन को भेजते थे और उत्तर में कहीं दंगा होता था, तो दक्षिण की पल्टन भेजते थे। जितना दूर, अपरिचित क्षेत्र में सेना जाय, उतनी ही गोली चलाने में ताकत आती है। हमने सुना है कि आजकल भी इसी नीति का अनुसरण किया जाता है। अहिंसा में ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ के शान्ति सैनिक जापान जायँ और वहाँ शान्ति

स्थापित करें, यह नहीं कहा जा सकता। लोक सेवा परायण और आजमाये हुए लोग ही शान्ति-स्थापना के लिए नजदीक के क्षेत्रों में भेजे जा सकते हैं।

शान्ति-सेना बनाने के लिए यह जरूरी नहीं है कि पहले कोई अशान्ति हो। बैंगलोर में अशान्ति न होने पर भी शान्ति-सेना की स्थापना हो सकती है। यह एक अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र है। यहाँ सेवा सेना और शान्ति-सेना बनायी जाय तो उसका असर सारे दक्षिण भारत पर होगा। इसके लिए ऐसे जवानों को आगे आना चाहिए, जिनका धन्धा निरंतर सेवा करना हो और मौके पर शांति-सेना के सैनिक बनकर स्निग्ध प्रेममय चित्त से मरने की तैयारी हो।

विज्ञान के युग में विज्ञानमय कोष की जरूरत

मेरी उनसे नहीं बनती और उनकी मुझसे नहीं बनती; उनसे मुझे द्वेष है और उन्हें देखने की रुचि मुझमें नहीं है यह सारी मन की भावना है। इस विज्ञान के जमाने में मनुष्य को मन से ऊपर उठना होगा। जब तक मन चलता है तब तक विज्ञान नहीं आता। उपनिषदों ने यह समझाया है कि मनोमय कोष के ऊपर विज्ञानमय कोष है। अब विज्ञानमय कोष जाग्रत हो चुका है। लोगों ने एक नया चन्द्र बनाया है जो पृथ्वी के इर्द गिर्द ५ मील ऊपर घूम रहा है। वहाँ बैठे बैठे उसे आकाश में फेंक दिया और घूमने का हुक्म दिया है। ऐसी शक्तियों के रहते हुए अपने काम क्रोध मत्सर, वासना आदि को कहाँ रखोगे? यह मेरी सम्पत्ति, यह तुम्हारी सम्पत्ति यह मेरी भाषा, यह तुम्हारी भाषा यह मेरा देश यह तुम्हारा देश यह सब कैसे टिकेगा? आपने संयुक्त कर्नाटक बनाया किन्तु यदि संयुक्त हृदय नहीं बना तो इस संयुक्त कर्नाटक की कौड़ी कीमत नहीं है। संयुक्त हृदय बनने से हम संयुक्त कर्नाटक के जरिये संयुक्त विश्व भी बना सकते हैं। यह सब अब आपको करना होगा।

डर किस चीज का ?

निर्विकार और निर्भय बनना मुश्किल नहीं है। यहाँ बैठे-बैठे ऊपर से बम गिरेगा तो भागोगे कहाँ? हिरोशिमा पर बम गिरा तो सारे लोग एकदम मरे।

उन्हें भागने का मौका कहाँ मिला? अब विज्ञान यहाँ तक पहुँच गया है, तो अब जो सेना रखेगा, वह मूर्ख साबित होगा। बड़े देश एटम और हाइड्रोजन बम रखते हैं, तो आप पुरानी रायफल क्या करेंगे? क्या अमेरिका और रूस की सेना के सामने हिन्दुस्तान की सेना टिकेगी? नहीं, तो फिर अपशकुन करने के लिए सेना क्यों रखते हो? आपका डर व्यर्थ है। क्या भूकंप का डर रखना होता है? सारी पृथ्वी काँपने लगेगी, तो कहाँ भागोगे? विश्व युद्ध से डरना भी भूकंप से डरने जैसा है। हम इसीलिए विश्व युद्ध को इग्नोर करते हैं। इसकी भी इच्छा तैयार करने की होगी, तभी विश्व युद्ध होगा, अन्यथा नहीं।

अहिंसा को विश्व युद्ध से कोई डर नहीं है। एटम और हाइड्रोजन बम इसीलिए आविर्भूत हुए हैं कि वे अहिंसा को स्थान देना चाहते हैं। जहाँ उनका अवतार समाप्त होता है, वहाँ अहिंसा का अवतार, कल्याणकारक शुरू होता है। वे अहिंसा के पूर्वगामी हैं। उनके बाद अहिंसा आनेवाली है।

हम लोगों को हिंसा की फिक्र है। सारी हिंसा का मुकाबला हमें करना होगा। सारे भारत में शान्ति के लिए पुलिस और मिलिटरी का उपयोग कहीं भी न करना पड़े, यह सर्वोदय में निष्ठा रखनेवाले हम सभी लोगों को सिद्ध करना होगा। इसीलिए हम शान्ति-सेना की बात करते हैं। भगवान् यह चीज अब हमसे और आपसे करवाना चाहता है।

बंगलोर

११-१०-५

ग्रामदान द्वारा वर्गों का स्वतः मूलोच्छेदन : ४ :

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता : हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की राय आपको अखबार में मालूम हो चुकी है। हमारी भूदान-ग्रामदान के काम के लिए पूरी सहानुभूति है। तात्त्विक विचार के क्षेत्र में भी हम आपके साथ हैं। अब हम आपसे प्रत्यक्ष कार्यक्रम के बारे में समझना चाहते हैं।

विनोबा : कम्युनिस्ट भूदान-ग्रामदान का कार्य कर सकते हैं परन्तु इस काम में श्रद्धा की जरूरत है। पहली श्रद्धा तो इस बात पर कि उनके पास पहुँचना है और विचार समझाना है। दूसरी श्रद्धा इस बात पर कि ग्रामदान में सबके हितों में अविरोध है। ग्रामदान में हम किसीको कोई तकलीफ नहीं पहुँचाना चाहते। जमीन बुद्धि सम्पत्ति श्रम आदि विविध शक्तियाँ हैं। किसीके पास कोई शक्ति है, तो किसीके पास कोई। आज जमीनवाला अपनी जमीन का उपयोग अपने घर के लिए करता है, गाँव के लिए नहीं। श्रमिक अपने श्रम का उपयोग और बुद्धिमान् अपनी बुद्धि का उपयोग अपने घर के लिए करता है, गाँव के लिए नहीं। जिसे हम गरीब कहते हैं, वह श्रम के लिहाज से श्रीमान् है। वह कंजूस बनकर अपना सारा श्रम अपने पास रखता है। कभी लाचारी से उसे देना पड़े तो देता है, परन्तु उसमें भी चोरी करता है। वह कम से-कम काम करने की कोशिश करता है और उधर मालिक उसे कम से-कम दाम देने की कोशिश करता है। इस तरह दोनों एक-दूसरे को ठगते हैं और दोनों मिलकर समाज को ठगते हैं। इसलिए होना यह चाहिए कि दोनों अपने पास जो कुछ है, उसे गाँव के लिए दें। सारी शक्तियाँ गाँव को समर्पित करनी हैं, इतना हरएक के हृदय में बैठना चाहिए। ऐसा होने से ही ग्रामदान सफल होगा और वर्ग हटेंगे।

वर्ग-संघर्ष मूलतः असत्य

वर्ग का अस्तित्व मानकर फिर वर्ग-संघर्ष की कल्पना की जाती है, यह सारा सिद्धान्त यहाँ नहीं आता। आप यहाँ अपनी समस्त शक्तियाँ गाँव को समर्पित करते हैं वहाँ वर्ग ही टूट गया। एक सामूहिक वस्तु बन गयी। समुद्र में लीन होकर कोई नदी नदी नहीं रही और न नाला नाला रहा। इस तरह यहाँ वर्ग की कल्पना मूल में ही कच्ची है। जो चीज हम वर्ग-संघर्ष के जरिये करना चाहते हैं, वह वर्गों का मूलोच्छेद करके ही क्यों न साधी जाय? वर्ग-संघर्ष को मानकर आप एक एक वर्ग को पक्का बना देते हैं। एक मालिक का दूसरे मालिक के साथ स्नेह होता है ऐसी बात नहीं है। परन्तु सारे मालिक हमारे शत्रु हैं ऐसा

लड़ने से वे एक हो जाते हैं। आप उनके बीच झगड़े पैदा करते हैं। इस तरह आप उनकी शक्ति मजबूत बनाते हैं। लेकिन हम ऐसी युक्ति से काम करते हैं कि वर्ग की कल्पना मूल में ही कट जाती है।

बिहार में एक मजेदार बात हुई। यहाँ के कुछ मालिकों ने अपने ही मजदूरों को जमीन देनी चाही। हमने कहा आप दे सकते हैं, बशर्ते कि वह जमीन पूरी हो। उन मालिकों ने अपने मजदूरों को पूरी जमीन दी। उसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे मजदूरों ने अपने मालिकों के पास जाकर कहा कि अमुक मालिक ने अपने मजदूरों को जमीन दी है आप भी हमें दीजिये। इससे हमारे आन्दोलन का प्रचार हुआ। फिर दूसरे मालिकों पर भी असर होने लगा। इस तरह मालिकों का परिवर्तन होना शुरू हुआ। वह प्रक्रिया पूरी नहीं हुई। एक हद तक आकर रुक गयी क्योंकि कार्यकर्ताओं की कमी थी। वह प्रक्रिया आगे बढ़ सकती है।

हिन्दुस्तान एक बड़ा देश है। यहाँ की एक संस्कृति है। यहाँ का काम समन्वय के तरीके से ही चलनेवाला है। योरपवालों का विचार दूसरा था। वहाँ पर एक विशिष्ट सामाजिक समाज था। उसने एक ढाँचा बनाया था। उस ढाँचे को तोड़ने के लिए एक कल्पना की गयी थी वही कल्पना हम यहाँ लागू करते हैं। बेचारा गरीब उसमें पिस जाता है। इसलिए मैं कहना यह चाहता हूँ कि आपने योरप के आधार पर जो अपना एक सिद्धान्त बनाया है उसमें समन्वय का काम करते हुए आपको परिवर्तन करना होगा। हिन्दुस्तान में जाति भेद है, जो योरप में नहीं है। इसलिए यहाँ हम वर्ग भेद की बात करेंगे, तो जातिभेद खड़ा होगा। यहाँ योरप के जैसा वर्गभेद नहीं बनेगा। आप यहाँ भेद को मूल से काटने की जरूरत है। आप इस बात को समझकर काम करें तो कारगर हो सकते हैं।

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता : आपका सिद्धान्त इस तरह है, परन्तु काम के बारे में आप हमसे क्या अपेक्षा रखते

विनोबा : मैं यह अपेक्षा रखता हूँ कि आप इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर काम करें। अपने मन में यह तैयारी रखनी चाहिए कि हम वर्ग-संघर्ष नहीं करना है उसको मूल में ही काटना है। अगर आपने इतना मानसिक

परिवर्तन कर लिया तो आप काम कर सकते हैं। सबके पास पहुँचते समय आपको यह मुश्किल मालूम होगी कि जिन्हें हम आज तक गालियाँ दे चुके हैं, उनके पास कैसे जायें ? फिर भी आपको जाना चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए कि हम आपकी सेवा करने आये हैं। यहाँ सेवा करेंगे और हमें विरोध होगा तो वह चुनाव में करेंगे। इस समय चुनाव के लिए नहीं, ग्रामदान के काम के लिए आये हैं। इसमें आपके हित को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। बड़े लोगों को यह समझाना होगा कि ग्रामदान में आपका हित सुरक्षित है। आपके और दूसरे के हितों में कोई विरोध नहीं है, एकत्र होने में सबका भला है।

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता : सब सम्पत्ति गाँव की होनी चाहिए, ऐसा कहने में कम्युनिस्टों को कोई आपत्ति नहीं है।

विनोबा : आपत्ति तो नहीं है, परन्तु उसके लिए अपना भी कुछ छोड़ना पड़ता है।

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता : हमारे पास छोड़ने के लिए कुछ नहीं है।

विनोबा : यह गलत है। हमने कई कम्युनिस्ट देखे हैं, जो काफी मालदार हैं। यह जगह ऐसा है कि बाप पूँजीवादी है, तो बेटा साम्यवादी। बेटा कहता है कि हम आपके साथ पूरी तरह से सहमत हैं। फिर जब हम उससे पूछते हैं कि कुछ जमीन दोगे तो वह जवाब देता है कि जमीन तो पिताजी के पास है। बिहार में हमने एक मजेदार बात सुनी। एक परिवार में एक भाई कांग्रेसवाला होता है तो दूसरा प्रजा-समाजवादी तीसरा कम्युनिस्ट तो चौथा सर्वोदयवाला। याने किसीका भी राज रहे तो उस परिवार का भला ही है।

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता : आज लाखों लोग बेघर हैं। उनके पास श्रम तो है लेकिन उन्हें मौका देना दूसरों के हाथ में है। ऐसी स्थिति में यह समस्या कैसे हल होगी ?

विनोबा : यह समस्या भी ग्रामदान से ही हल होगी। आज जैसे श्रीमान् स्वार्थ प्रेरित हैं, वैसे गरीब भी स्वार्थ प्रेरित हैं। इसलिए त्याग आदि की जो बातें समझानी हैं वे बड़ों को ही समझानी नहीं हैं, बल्कि छोटों को भी समझानी

है। यहाँ भी मालकियत को पकड़ी रखी है उसका नाम छोटे मालिक हैं। छोटे छोटे मालिक और मजदूर आदि सभी मालकियत को मानते हैं और अपनी मालकियत बढ़ाना चाहते हैं। इसलिए छोटे लोगों को भी ग्राम निष्ठा सिखानी होगी। उन्हें यह सिखाना कठिन नहीं है क्योंकि इसमें उनका भला है।

आज हालत यह है कि हिन्दुस्तान में मजदूर आठ घंटे के काम पर चार घंटे से ज्यादा काम नहीं करते। यह अपने देश का ही दोष है। महात्मा गांधी हम दक्षिण अफ्रीका की बात सुनाते थे। प्राचीन काल पहले की बात है। अफ्रीका में साधारणतया हिन्दुस्तानी मजदूरों को १॥) मजदूरी देनी पड़ती थी और जापानी मजदूरों को १)। फिर भी अफ्रीका के लोग जापानी मजदूरों को ही पसन्द करते थे क्योंकि जापानी मजदूरों के लिए देखरेख करने की जरूरत नहीं रहती थी। वे प्रामाणिकता से काम करते थे और हिन्दुस्तानी मजदूर देखरेख के बिना प्रामाणिकता से काम नहीं करते थे। इसलिए जैसे अमीरों का नैतिक स्तर उठाना होगा क्योंकि वे स्वार्थी हो गये हैं, वैसे ही गरीबों का नैतिक स्तर भी उठाना होगा।

बेंगलोर —कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के बीच
११-१०-५०

विद्यार्थी और शिक्षक वर्तमान राजनीति को छोड़ें : ५

इस समय हम यहाँ पर विद्यार्थियों और नागरिकों के सामने बोल रहे हैं। हमारे मन में दोनों एक ही चीज हैं। विद्यार्थी उत्तम नागरिक होने चाहिए और नागरिक भी उत्तम विद्यार्थी होने चाहिए।

विद्याध्ययन आमरण जारी रहे

लोग समझते हैं कि विद्यार्जन का एक निश्चित काल होता है। जिस विद्यालय का शिक्षण पूरा हुआ और गृहस्थाश्रम में प्रवेश हुआ कि विद्याध्ययन का प्रकरण समाप्त मान लेते हैं। लेकिन यह हमारे समाज का विचार नहीं है।

हमारे यहाँ का विचार यह है कि विद्याध्ययन की क्रिया आमरण जारी रहनी चाहिए। जैसे प्रतिदिन स्नान होना चाहिए और आहार आदि भी होना चाहिए, वैसे ही अध्ययन भी प्रतिदिन होना चाहिए। जिस मनुष्य का अध्ययन नित्य-निरंतर चलता रहता है वह हमेशा ताजा रहता है, उसकी प्रतिभा में नये नये विचार सूझते रहते हैं उसे कभी बुढ़ापा नहीं आता। अध्ययनशील व्यक्ति का शरीर जैसे जैसे क्षीण होता है, वैसे-वैसे उसकी स्मृति और चिंतनशक्ति उत्कट होती जाती है। बचपन म हमारी जो स्मरणशक्ति थी उससे आज बहुत ज्यादा है। उसका एक ही कारण है—इंद्रिय-संयमपूर्वक निरंतर अध्ययनशीलता। इसलिए विद्यार्थी और नागरिक को हम एक रूप में ही देखना चाहते हैं।

विद्यार्थी और राजनीति

यह बात बार-बार पूछी जाती है कि विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए या नहीं? हमारा जवाब यह है कि अब विद्यार्थियों को शुद्ध राजनीति में नहीं लोकनीति में प्रवीण होना चाहिए। आज सारी दुनिया नजदीक आ गयी है। विज्ञान ने हमें जबरदस्ती से दुनिया का नागरिक बना दिया है। ऐसे समय में अब भिन्न भिन्न देश अलग नहीं रह सकते। इसलिए हमें विश्वव्यापक राजनीति का ही विचार करना चाहिए। हम उसे लोकनीति कहते हैं। विश्व मानव बनाने की जो राजनीति है उस पर राजनीति शब्द लागू नहीं होगा।

अल्पमत-बहुमत के नाम पर आज जो झगड़े चलते हैं, वह फूट डालनेवाली राजनीति का परिणाम है। इस राजनीति का भविष्य के लिए कोई प्रयोजन नहीं है। अब हमें सर्वानुमति से चलनेवाली लोकनीति चाहिए। इस लोकनीति को कैसे लाना है इस बारे में सोचने की आवश्यकता है। इसका थोड़ा-सा आरंभ सुरक्षा परिषद् ने किया है। वहाँ सब राष्ट्रों के प्रतिनिधि एक चीज का मान्य करें और एक मान्य न करे, तो वह एक भी 'वीटो' कर सकता है। क्वेकर (शांतिवादी) लोग भी सर्वानुमति से प्रस्ताव पास करते हैं। चाहे कम ठहराव हो, तो भी लोकनीति का प्रयोग है। हम इस प्रयोग को आगे ले जाना चाहते

है। इसलिए हम विद्यार्थियों से कहते हैं कि आपको फूट डालनेवाली राजनीति में हिस्सा नहीं लेना चाहिए और व्यापक लोकनीति का अध्ययन करना चाहिए। उसके लिए आज के राजनैतिक विचारों का समाजवाद, साम्यवाद, साम्राज्यवाद, सर्वोदय आदि अध्ययन करके उनके गुण दोषों की चर्चा करनी चाहिए।

सेवा का रहस्य

विद्यार्थियों को अपने विचार व्यापक बनाने चाहिए। व्यापक विचार बनाने के बाद संकुचित व्यवहार में पड़ें तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन उसके पहले ही संकुचित क्षेत्र में पड़ जायेंगे तो सारा जीवन संकुचित हो जायगा। जैसे हम यहीं काम करना शुरू करते हैं तो छोटे क्षेत्र में, देश के साथ सम्बद्ध क्षेत्र में ही काम करते हैं। ग्राम-सेवक ग्राम में ही काम करेगा, देश-सेवक देश में ही करेगा। सेवा क्षेत्र अपने ही घर, गाँव या देश तक सीमित हो, पर उसके मूल में विश्वव्यापक दृष्टि होनी चाहिए। बच्चे की सेवा करते समय माँ को ऐसी संकुचित भावना नहीं रखनी चाहिए कि यह मेरा बच्चा है और मैं इसकी सेवा कर रही हूँ। हर माँ की यह भावना होनी चाहिए कि सारे विश्व का प्रतिनिधि मेरे घर में आया है और मुझे उसकी सेवा का अवसर मिला है। राम के रूप में भगवान् ही मेरे घर आये हैं, ऐसा समझकर कौशल्या सेवा करती थी। कौशल्या जैसी भावना से बच्चों की सेवा करनेवाली माता मोक्ष पा सकती है। जितनी दृष्टि व्यापक रखी जायगी, उतनी ही सेवा की कीमत बढ़ेगी। सेवा की कीमत उसके परिमाण पर निर्भर नहीं होती। हनुमान् की मूर्ति छोटी हो या बड़ी, इसकी कीमत नहीं है। किस भावना और किस दृष्टि से उसकी पूजा की जा रही है, उसकी कीमत है। छोटी दृष्टि से देश की सेवा करना भी संकुचित विचार ही माना जायगा और बड़ी दृष्टि से घर की सेवा करना भी व्यापक विचार माना जायगा।

आज बड़े बड़े लोग देश-सेवा करते हैं, परन्तु उनका दिमाग संकीर्ण होता है। उसका क्या परिणाम आता है? हिटलर अपने आपको बड़ा भारी देश-सेवक समझता था। उसने संकुचित दृष्टि से जर्मनी की सेवा की तो सारा समाज विनाश की ओर गया। आज सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा करनेवाले बड़े बड़े लोगों की सेवा

में भी राग द्वेष पैदा होते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि संकुचित होती है। संकुचित दृष्टि से व्यापक सेवा करने पर भी वह संकुचित हो जाती है। व्यापक दृष्टि से निर्मल बुद्धि व निष्काम भाव से छोटी सेवा करने पर भी वह बड़ी बन जाती है। यह सेवा का रहस्य है।

हम विद्यार्थियों को ऐसी किसी मर्यादा में नहीं रखना चाहते कि उन्हें अमुक काम नहीं करना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए अचिन्तनीय विषय कोई है ही नहीं। विशाल व्यापक दृष्टि प्राप्त करने के बाद वे चाहे संकुचित क्षेत्र में काम करें, तो भी सुरक्षित है। इसलिए विद्यार्थियों और शिक्षकों का कार्य है कि वे व्यापक राजनीति का अध्ययन करें और आज की राजनीति को छोड़ें।

बैंगलोर
१०-१०-२०

व्यापारी सेवा तथा शान्ति स्थापित करने का दायित्व लें : ६ :

हम व्यापारियों से सिर्फ सर्टिफिकेट लेकर संतुष्ट हो जायें ऐसे मूर्ख नहीं हैं। हम उनकी प्रतिभा चाहते हैं। इसीलिए हमारा यह मानना है कि वाणिज्य मंडल को शांति-सेना मंडल का कार्य करना चाहिए।

चातुर्वर्ण्य की मूल कल्पना

हिन्दुस्तान में चातुर्वर्ण्य की कल्पना बड़ी अच्छी थी। गुणानुसार काम बाँटे गये थे। उसके मूल में भावना यह थी कि हर वर्ण में चारों वर्ण होने चाहिए। यानी हर मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों होना चाहिए। परिपूर्ण व्यक्तित्व होना चाहिए लेकिन उसके साथ साथ सामाजिक कार्य के तौर पर एक कार्य करना चाहिए। जैसे क्षत्रिय को रक्षण का काम सौंपा गया है। उसमें क्षात्र होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि शौर्य गुण ही क्षत्रिय को सौंप दिया। वह तो सबों में होना चाहिए। धन ही प्रबंध करने का काम वैश्यों को सौंपा गया। उन पर शासन लिए नहीं, अर्थात्

समाज के लिए संग्रह करने की जिम्मेवारी डाली गयी। यह धर्म की योजना थी स्वार्थ की नहीं। लेकिन वैश्य संग्रह करें और क्षत्रिय रक्षण करें, यह खतरनाक बात थी। पैसा मैं रखूँगा और रक्षण दूसरा करेगा तो मुझे रात को नींद नहीं आयेगी। मैं हमेशा डरता रहूँगा। हमारी क्षत्रिय सेना यहाँ १०० मील की दूरी पर लड़ते-लड़ते ५ कदम पीछे हट गयी तो एकदम बाजार-भावों में उथल-पुथल हो जायगी और वैश्य घबरा जायेंगे। वे समझेंगे कि शत्रु कदम नजदीक आ गया है, यद्यपि १५० मील दूर होगा। इस तरह यदि रक्षण की जिम्मेवारी एक पर और संग्रह की जिम्मेवारी दूसरे पर होगी तो संग्रह करनेवाला डरपोक बनेगा। यदि मेरे पास संग्रह की जिम्मेवारी हो और रक्षण की जिम्मेवारी न हो तो मेरी भी यही हालत होगी।

व्यापारियों की दोहरी स्थिति

व्यापारियों ने सेना को अलग रख रखा है। दुनियाभर में कोई भी व्यापारी कभी सेना कम करने की राय नहीं दे सकता। इस तरह एक ओर तो व्यापारी इतने भयभीत हैं कि सारा आधार सेना पर रखते हैं और दूसरी ओर वे मांसाहार नहीं करते। हिन्दुस्तान में मांसाहार परित्याग करनेवालों में ज्यादा से ज्यादा संख्या वैश्यों की है। उन्होंने दया भाव और करुणा के कारण ही मांसाहार छोड़ा है। उनमें इतनी दया है कि कहीं भी किसी जानवर को लगती है तो उनसे सहन नहीं होता। वे फौरन उसे अस्पताल पहुँचाते उसकी सेवा के लिए खर्च भी करते हैं। इस तरह एक तरफ तो दया और करुणा है और दूसरी तरफ डरपोकपन और हिंसा-शक्ति का आश्रय है। इस विरोधी भाव के कारण अहिंसा की ताकत नहीं बनती।

गांधीजी की अहिंसा में शोध

हिन्दुस्तान में वैश्य, ब्राह्मण आदि वर्गों में अहिंसा तो थी पर उसमें तेज नहीं था। अहिंसा में ताकत लायी गांधीजी ने। उन्होंने अहिंसा को खाने पीने के क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा। मच्छर नहीं मारने या बीमार की सेवा करने तक ही अहिंसा की मर्यादा नहीं मानी। इसलिए उनकी अहिंसा में

शौर्य दाखिल हुआ। अहिंसा के लिए हाथ में तलवार लेने की जरूरत नहीं है। तलवार रखना तो डर का लक्षण है। हम प्रेम से, निर्भयता से आगे बढ़ें और मरने का मौका आये तो मरें इस तरह की वृत्ति गांधीजी ने सिखायी। गांधीजी भी वैश्य थे लेकिन वे सिर्फ दया भाव से ही मनुष्य न रहे। उन्होंने कहा कि हिंसा का मुकाबला करने में मैं बिलकुल नहीं घबराता। हमने गांधीजी को नजदीक से देखा है। उनमें बहुत गुण थे कुछ दोष भी थे। हर मनुष्य में गुण दोष दोनों होते हैं। परन्तु उनमें जरा भी डर नहीं था। वे अत्यंत निर्भय निष्पाप पुरुष थे। वे कहते थे कि "मेरी परीक्षा और मेरी अहिंसा की परीक्षा मेरे मरने पर होगी जीते जी नहीं। मरते समय मैं 'राम-नाम' लूँ, तब तो परीक्षा है।" और ठीक वैसा ही हुआ। उनको जैसे ही गोली लगी वैसे ही उनके मुँह से निकला—'हे राम'। यह निर्भय मनुष्य की करुणा है। उन्होंने करुणा को निर्भयता के साथ जोड़ दिया।

जिस करुणा में निर्भयता नहीं वह करुणा नहीं, देहासक्ति है। मैं सामने वाले का दुःख नहीं देख सकता क्योंकि अपना दुःख भी नहीं देख सकता हूँ। अगर ऐसा है तो वह करुणा कायर है। मैं अपना दुःख देख सकता हूँ पर सामनेवाले का दुःख न देख सकूँ तो वह सच्ची करुणा है। 'वृक्षैव विधासेत् छिद्यमाने च मूकत्व। वृक्ष जैसे खड़े रहें। कोई काटे तब भी मुँह से शब्द न निकले ऐसी वृत्ति होने से ही करुणा निर्भयता के साथ जुड़ी रहेगी। गांधीजी चाहते थे कि हिन्दुस्तान के व्यापारियों में ऐसी करुणा आ जाय। उन्होंने कुछ ऐसे व्यापारी पैदा भी किये। उनकी यह बराबर कोशिश रही कि सारी जनता ही ऐसी बने।

समाज-सेवा का कार्य करें

हम यहाँ आपसे सम्पत्तिदान की माँग नहीं करते। संपत्ति तो आपके पास पड़ी है। उसे आप दया के काम में लगायेंगे, यह तो एक मामूली बात है। कुछ लोग आपसे कहते होंगे कि बाबा का कोष इतने लाख रुपयों का है, इसलिए इकट्ठा कर दो। लेकिन इस तरह कोष जमाने का काम बाबा

का धर्म सिद्ध करना है। उस दृष्टि से व्यापारी इस काम की ओर देखें और आप ही योजना बनायें। हमारी राय है कि हिंदुस्तान अंग्रेजों के सामने व्यापारियों ने खोया है। इसलिए अब स्वराज्य को मजबूत बनाने का काम भी व्यापारियों को ही करना चाहिए।

सच्चा वैश्य धर्म अपनाइये

भावनावश होकर एकदम कुछ कर बैठना व्यापारी का लक्षण नहीं है। इसलिए यदि एक बार आप कुछ कदम उठायें, तो फिर पीछे न हटें। जो भावनावश होकर काम करते हैं, वे पीछे हटते हैं। व्यापारियों पर हमारा ज्यादा भरोसा है। वे कोई काम नहीं करेंगे तो नहीं करेंगे, परन्तु करेंगे तो पीछे नहीं हटेंगे। इसलिए यह काम ठीक है या नहीं, इस पर सोचिये और यदि आपकी बुद्धि को जँचता है, तो इसे उठाइये। नहीं तो यह बड़ा मनुष्य आया है कुछ पैसा माँगता है, इसकी तरफ से माँगनेवाले भी बड़े हैं इसलिए कुछ देना है, ऐसा सोचकर देंगे, तो इसमें कोई सार नहीं है। उससे हमारा कोई काम नहीं बनेगा। आपके घर में जितना पैसा पड़ा है, कुछ न कुछ हमारा है। हम उसे हाथ में लेकर क्या करेंगे? आपके घर यानी हमारे बैंक में है। हम फंड नहीं चाहते। हम तो चाहते हैं कि आप अपनी बुद्धि, शक्ति, प्रेम इस काम में लगायें। फिर उसके साथ आपकी संपत्ति, आपका लड़का और आपका घर भी आयेगा। बाहर कोई कमी है, उसे अस्पताल भेजना है परन्तु अस्पताल दूर है इसलिए आप उसे अपने घर में ही रखेंगे, इस तरह आपका घर भी सच्चा बनेगा। यदि आप इस विचार को कबूल करेंगे, तो आपका जीवन ही परोपकारमय सेवामय होगा। इसीको वैश्य धर्म कहते हैं। नहीं तो क्या कोई व्यापार को धर्म कहेगा? वह तो स्वार्थ का काम है। गीता ने उसे धर्म कहा है और वह बताया है कि यदि वैश्य अपने धर्म का अनुसरण उत्तम भावना से करे, तो उसे मोक्ष मिलेगा। इस तरह कौन से देश में और समाज में व्यापार से मोक्ष प्राप्ति की बात बतायी है? जिन किन्होंने कहा है ऐसा ही कहा है कि त्याग से मोक्ष प्राप्ति होती है। परन्तु गीता एक विचित्र धर्म ग्रन्थ है, जो

से छिपाया जाय। तब उन्होंने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके लोगों से उस मंत्र का जप करने के लिए कहा। दुनिया में गुरु की आज्ञा भंग करने से बढ़कर और क्या पाप हो सकता है? रामानुज ने वही पाप किया। गुरु को मालूम होने पर उन्होंने रामानुज से पूछा : "तूने यह क्या किया? अब तेरे लिए नरक की ही गति है।" रामानुज बोले : "ठीक है। मेरी तो यह गति होगी, परन्तु मैंने जिन्हें मंत्र सिखाया उन लोगों की क्या गति होगी? क्या वे भी नरक में जायँगे?" गुरु ने कहा : "नहीं। उनका तो उद्धार हो जायगा।" रामानुज ने कहा : "सज्जनों के उद्धार का निमित्त बनकर यदि मुझे नरक जाना पड़े तो मैं उसे पसन्द करूँगा।" यही नारायण-परायण का लक्षण है।

नारायण-परायण की परम्परा

शंकराचार्य अद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उनके विचार को माननेवाले रामकृष्ण परमहंस निकले। विवेकानन्द उनके शिष्य थे। वे परिपूर्ण अद्वैत मानते थे। उन्होंने दरिद्रनारायण की सेवा को सर्वोत्तम धर्म माना। 'दरिद्रनारायण' शब्द विवेकानन्द ने ही प्रचलित किया है। इसीको बाद में गांधीजी ने उठाया और घर-घर पहुँचाया। विवेकानन्द इस मंत्र के द्रष्टा थे और गांधीजी प्रचारक। हम उनके दासानुदास होकर आपके चरणों में उपस्थित हुए हैं। यह नारायण-परायण की परम्परा है।

विवेकानंद राजनीति में नहीं पड़े। गांधीजी उसमें पड़े, ऐसा दीखता था। परन्तु ऐसी बात नहीं थी। गांधीजी बराबर कहा करते थे कि राजनीति तो मेरा ऊपर ऊपर का लिबास है। [illegible] मैं भक्त हूँ। उन्होंने जीवन और मरण से अपने आपको भक्त सिद्ध करके दिखा भी दिया। गांधीजी लोगों को आखिर आखिर में ऐसी बातें समझाते थे, लोग समझ नहीं पाते थे और गांधीजी को ही अपना विरोधी मानते थे। उस समय हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के मसले को लेकर लोग पागल बने थे। आपस आपस में ही झगड़ा चलता था। हिन्दू मुसलमान लड़ते थे। गांधीजी अपनी हर प्रार्थना-सभा में लोगों का ध्यान [illegible] मिलने का प्रयत्न करते थे। इस कारण एक बार एक भाई ने उन्हें

किया : "आप बूढ़े हो गये हैं। अब हिमालय चले जाइये।" गांधीजी ने जवाब दिया कि 'अगर आप हिमालय जायेंगे, तो आपकी सेवा के लिए मैं भी हिमालय पहुँच जाऊँगा। आप हिमालय न जाकर यहीं रहते हैं, तो आपका सेवक होने के नाते मैं भी यहीं रहूँगा।"

यही भागवत का भविष्य था कि कलियुग में ऐसे सेवक होंगे, जो नर-मनुष्य को भगवान् समझकर सेवा करेंगे। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि जिस जमाने में विवेकानन्द और गांधीजी हुए, वह कौन-सा जमाना है? अग्निदेव की उपासना या मूर्ति पूजा का जमाना बीत गया। आज भी हम अग्नि के लिए आदर रखते हैं, वह नारायण का ही रूप है। परन्तु उस अग्नि नारायण को हम हृदय में ही रखना चाहते हैं। इसी तरह मूर्ति के लिए भी हमारे मन में आदर है। परन्तु हमारे सामने जो ये खड़ी मूर्तियाँ रहती हैं, हम उनकी सेवा करना चाहते हैं। गीता में 'मूर्ति' शब्द का बहुत अच्छा अर्थ दिया है : 'सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।'

कलियुग में आस्तिक-नास्तिक दोनों नारायण-परायण

कलियुग में नास्तिक भी बड़े भक्त होते हैं। वे कहते हैं कि हम मानवता, सत्य, प्रेम, अहिंसा, सहयोग आदि मानते हैं, परन्तु ऊपरी आसमान में रहनेवाले देवता को नहीं मानते। हम कहते हैं कि उन्हें न मानो, तो कोई हर्ज नहीं है। आप मुझसे मेरे बाप का नाम पूछें, तो मैं बता सकता हूँ। उनके बाप का नाम भी बता सकता हूँ, लेकिन उनके बाप के बाप का नाम मुझे मालूम नहीं। सात-आठ पीढ़ी का नाम क्या मालूम होगा? इसी तरह ऊपरवाले आसमानवाले देवता को नहीं मानते, तो कोई परवाह नहीं। उस देवता की मूर्तियाँ यहाँ विराजमान हैं, उनको तो मानते हैं। यह कैसा अद्भुत युग है कि इस युग में आस्तिक तो आस्तिक हैं ही, परन्तु नास्तिक भी आस्तिक हैं।

नास्तिकों का उल्लेख चार्वाक दर्शन में आता है। 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' उनका सिद्धान्त माना गया है। आज के 'गोरा' नास्तिक हैं। हमने उनसे पूछा कि 'नास्तिक' से आपका क्या मतलब है? उन्होंने कहा : 'मनुष्य से प्यार करना

सत्य को कभी न छोड़ना, भ्रांत विचार को न मानना, प्रयत्नवाद पर विश्वास रखना, सिर पर हाथ रखकर न बैठना आदि-आदि।" इसका क्या अर्थ हुआ? कलियुग के नास्तिक कैसे हैं? इस युग के आस्तिक भी नारायण-परायण हैं और नास्तिक भी नारायण-परायण हैं।

आप पूछते हैं कि इस युग में निष्काम भाव से सेवा करनेवाले कैसे निकलेंगे? हम कहना चाहते हैं कि अगर इस युग में नहीं निकलेंगे, तो और किसी भी युग में न निकलेंगे। त्रेतायुगवाला व्यक्ति गुफा में जाकर ध्यान करेगा। द्वापर युगवाला व्यक्ति पूजा-परायण होगा। कृतयुगवाला व्यक्ति बैठा ही रहेगा, क्योंकि उसके लिए तो सब कुछ हो चुका होगा। यदि उसे बैठने में तकलीफ होगी, तो वह घूमना शुरू करेगा, लेकिन और कुछ नहीं करेगा। इसलिए कलियुग ही ऐसा युग है, जिसमें सेवा-परायण समाज पैदा होगा और यही हो रहा है। इसी बैंगलोर शहर के १ ४० लोगों ने सेवा-सेना और शान्ति-सेना के लिए अपने नाम दिये हैं।

सेवा-सेना के लिए पहली शर्त यह है कि सेवा सैनिकों को निष्काम भाव से सेवा करनी चाहिए। दूसरी शर्त यह है कि उन्हें अपने जीवन में अपरिग्रह के विचार को मानना चाहिए।

अपरिग्रह का विकल्प

समाज में सम्पत्ति का प्रवाह बहते रहना चाहिए। उसके बिना समाज टिकेगा नहीं। ट्रस्टी के नाते सम्पत्ति रखने और समाज के लिए उसे छोड़ देने की बात को कबूल करना ही अपरिग्रह का विकल्प है। बाबा अपरिग्रह की बात करके समाज को अपहरण से बचाना चाहता है।

अपहरण कई प्रकार से किया जाता है। मारपीट से किया जाता है, वह प्रगट अपहरण है। करों के जरिये सम्पत्ति छीनी जाती है, वह विधान बना हुआ अपहरण है। इन दिनों मृत्यु पर भी कर लगाया गया है। उसे 'डेथ ड्यूटी' कहते हैं। अब तक जिन्दे मनुष्य पर कर लगता था, अब मरे मनुष्य पर भी कर लगाने की बात है। इस हालत में दरिद्री लोग यही भावना रखेंगे कि श्रीमान् मनुष्य

दस-से बन्द करें। अपरिग्रह मानसिक में हो या कानून में उसका एक स्थान है। उसमें न द्रव्य शुद्धि होती है और न सम्पत्ति का आरोग्य ही रहता है। इसलिए अपरिग्रह की जगह अपरिग्रह ही होना चाहिए। वहाँ अपरिग्रह का रूप अब न लिया जाय। यह एक जीवन निष्ठा है, जीवन विचार है।

अपरिग्रह की पहचान

हमने जो सम्पत्तिदान माँगा है वह अपरिग्रह के सिद्धान्त की पहचान के तौर पर ही माँगा है। उससे यह समझना चाहिए कि हमारे पास जो चीज है, वह सबके लिए है। उसमें मैं भी आ गया। अपरिग्रह का विचार बड़ा ही महान विचार है। उसके आधार से समाज में सम्पत्ति का प्रवाह सतत बहता रहेगा। हमारे शास्त्रकारों ने सम्पत्ति के लिए 'द्रव्यम्' शब्द का उपयोग किया है। वह एक जगह स्थिर न होकर सतत बहता रहे, यह अर्थ है। दूसरी भाषाओं में इसकी तुलना करनेवाला शब्द मुश्किल से ही मिलेगा। हम पैसा नहीं द्रव्य चाहते हैं जो समाज में सतत बहता रह सके।

अब तक पानी बहता था लेकिन भूदान आन्दोलन से अब जमीन का बहना भी शुरू हो गया है। इसी तरह सम्पत्ति भी बहती रहनी चाहिए। प्रेम आदि गुण भी सम्पत्ति ही हैं। आज दुनिया में अशान्ति है, उसका मुख्य कारण यह है कि सम्पत्ति का संग्रह चन्द लोगों के पास हो गया है और बाकी सब लोग सम्पत्ति हीन हो गये हैं। इसीलिए शान्ति सेना, सेवा सेना आदि के विचार में हमें अपरिग्रह को स्थान देना पड़ा। इससे व्यक्ति और समाज दोनों बच जायेंगे।

बैंगलोर
१८ १ २

प्रश्न : बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या का समाधान कैसे होगा ?

उत्तर : बढ़ती हुई जनसंख्या का जो सवाल आज दुनिया में पैदा हुआ है, वह कम से कम फिलहाल हिन्दुस्तान के लिए लागू नहीं होता। इस समय हमारे यहाँ की जनसंख्या प्रति वर्गमील १   ही है जब कि इंग्लैंड की ५००—६०० और जापान की ७   है। यह ठीक है कि हिन्दुस्तान के बाज-बाज कैसे कुछ हिस्सों में प्रति वर्गमील १   जनसंख्या भी है परन्तु साधारणतया यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे देश की जनसंख्या ज्यादा है।

पृथ्वी को जनसंख्या का भार नहीं

पृथ्वी को पाप का भार होता है, जनसंख्या का नहीं। पाप से जनसंख्या घट सकती है और बढ़ भी सकती है। पुण्य से भी जनसंख्या घट-बढ़ सकती है। इसलिए पुण्य-कार्य करने से जनसंख्या घटे भी जाय, तो अच्छी बात है। कृत्रिम उपायों से सन्तति निरोध करके जनसंख्या घटाना गलत होगा। उत्तम सदाचरण से संख्या बढ़ी तो लोग वीर्यवान् होंगे। पराक्रमी महापुरुषों की सन्तान भी पराक्रमी होगी। पराक्रमी सन्तति कभी भाररूप नहीं होती क्योंकि वह पुण्य से उत्पन्न होती है। पाप से जो सन्तति होती है, वह बिल्कुल बेकार होती है। इसीलिए वह पृथ्वी के लिए भाररूप होती है।

वैज्ञानिक दृष्टि का उपयोग

जैसे जैसे विज्ञान बढ़ेगा मनुष्य की वृत्ति भी वैज्ञानिक बन जायगी। विज्ञान के युग में विज्ञान ही मनुष्य की वृत्ति बनायेगा। विज्ञान का स्तर मन के स्तर से ऊपर है। इसलिए मानसिक काम क्रोध कम होंगे। वैज्ञानिक मनुष्य विकारी नहीं होता। वह हर विषय में पदार्थनिष्ठा के कारण भौतिक दृष्टि से सोचता

है आत्मशक्ति से नहीं। इस कारण मुझे यह डर बिल्कुल नहीं है कि आप मनुष्य संख्या बहुत बढ़ जायगी।

आज हमें सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का पता कम है। विज्ञान से यह पता चलेगा। फिर जितना जितना गूढ़ अधिक प्रकट होगा, उतना दर्शन मात्र से आनन्द आयेगा।

—सुसंस्कृत व्यक्ति दूसरे को देखकर खुश हो जायगा।

—जो उससे कम सुसंस्कृत होगा वह हाथ मिलायेगा।

—जो उससे भी कम सुसंस्कृत होगा वह गले में हाथ डालेगा।

—जो जंगली होगा वह आलिंगन देगा और जो उससे भी ज्यादा जंगली होगा वह चुम्बन देगा।

चन्द्र को देखने पर हम चुम्बन नहीं करते। उसे देखने मात्र से प्रसन्नता होती है। वैसे ही विज्ञान बढ़ेगा तो आपको हर चेहरे में चंद्र दीखेगा। जितना जितना विज्ञान बढ़ेगा उतना उतना दर्शनानन्द बढ़ेगा और स्पर्शनानन्द घटेगा। ऐसी हालत में मनुष्य को अधिक संतान बढ़ाने की इच्छा नहीं होगी। संतान की इच्छा के बिना काम प्रेरणा नहीं होगी।

बँगलोर
१४-१०-२

महापुरुषों का अवतारीकरण अवांछनीय : ९ :

अपने देश में विभूति-पूजा चलती है। यहाँ महापुरुषों को ईश्वर रूप में देखने की आदत पड़ गयी है। मानव के रूप में अतिमानव के दर्शन करने की कोशिश अच्छी भी है, परन्तु इसमें हानि भी है। ऐसा करने से उनका चरित्र अनुकरणीय नहीं रहता, भजनीय हो जाता है और वह परमेश्वर के गुण-कीर्तन के अन्दर आ जाता है। इस तरह भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं और भक्ति-मार्ग परिपुष्ट होता है। परन्तु इस तरह से भक्ति-मार्ग की परिपुष्टता की

हिन्दुस्तान को असह्य नहीं है। यह काम राम और कृष्ण ने बहुत कर लिया। उसमें अब वृद्धि की गुंजाइश नहीं है। इसलिए दूसरों को उस कोटि में रखने से लाभ नहीं होगा। हम नये नये मनुष्यों को अतिमानव बनाने का कितना भी प्रयत्न करेंगे, तो भी वे राम और कृष्ण के मुकाबले में टिक नहीं सकेंगे और इस विज्ञान युग में हमारा ऐसा प्रयत्न भी हास्यास्पद होगा।

अवतारीकरण की प्रवृत्ति गलत

आजकल यह कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस राम और कृष्ण दोनों मिलकर बने। रमण महर्षि भी प्रभु के अवतार माने जाते हैं। श्री अरविन्द के विषय में भी उनके शिष्य ऐसी ही कल्पना करते हैं और दूसरे लोग भी करते हैं। इस प्रकार का अवतारीकरण मुझे नहीं जँचता। फिर भी मैं कबूल करता हूँ कि राम और कृष्ण का चरित्र मुझे तल्लीन करता है। उन्हें फिर से कोई मानव-रूप में लाने की कोशिश करेगा तो वह हास्यास्पद होगा। चिंतामणराव वैद्य ने बहुत ही मेहनत करके ऐतिहासिक ढंग से कृष्ण का चरित्र लिखा। बचपन में वह मेरे हाथ आया। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने श्रीकृष्ण की योग्यता को सिद्ध करने के लिए उनकी तुलना नेपोलियन और सीजर के साथ की है। उसका मुझ पर बहुत बुरा असर हुआ। मैंने कहा कि कहाँ श्रीकृष्ण और कहाँ नेपोलियन तथा सीजर! क्या यह कोई तुलना का विषय है? मैंने बड़ी उम्र में फिर उस किताब को पढ़ा, ताकि लेखक पर अन्याय न हो। किताब बहुत अच्छी है, परन्तु उसमें भक्ति-रस पैदा नहीं होता। अनेक वर्षों के प्रयत्न से जो भक्तिभाव निर्माण किया गया है उसे इस तरह तोड़ना ठीक नहीं है।

ईसा के साथ गांधी की तुलना

बीच में किसी भाई ने गांधीजी की तुलना ईसामसीह के साथ की थी। गांधीजी का ईसा की कोटि का मान लिया गया था। सौभाग्य की बात है कि दो [illegible] हत्यारा ही था। लाख कोशिश करें तो भी गांधीजी की तुलना ईसा के साथ नहीं हो सकती। ईसा का देहांत हुआ, उसे क्रास पर चढ़ाया और वह [illegible] हुआ। इसलिए ईसा की तुलना दूसरे मानव के साथ

कसकर बाँधना पड़ता था। यह दयालु कार्य था फिर भी बड़ा क्रूर मालूम होता था। आज उसकी जरूरत नहीं है। क्लोरोफार्म की खोज हुई है यह करुणा है। ऐसी कई प्रकार की रचनात्मक शक्तियाँ विज्ञान के कारण हासिल होती हैं और मानव-जाति का भार, दुःख कम होता है। इस दृष्टि से अहिंसा के लिए विज्ञान बड़ा ही वरदान है। विज्ञान के लिए भी अहिंसा वरदान है। अहिंसा न हो तो विज्ञान मानव जाति को खत्म करेगा और अपने को भी खत्म करेगा।

रोग-निवारण के उपाय

वैद्यशास्त्र के बारे में मैं दो-तीन बातें कहूँगा। पहली बात तो यह है कि रोग पैदा न होने देने के जितने उपाय हो सकते हैं उतना अच्छा। प्राकृतिक जीवन रहना चाहिए, उसकी तालीम मिलनी चाहिए और कहीं बीमारी पैदा हो जाय, तो प्राकृतिक उपचार किये जाने चाहिए। जिस मौके पर गाँव में पैदा होनेवाली जड़ी-बूटी का उपयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से आयुर्वेद का महत्त्व है।

—प्रथम महत्त्व का है प्राकृतिक जीवन।
—द्वितीय महत्त्व का है प्राकृतिक उपचार।
—तृतीय महत्त्व का है आयुर्वेद।

आयुर्वेद के बाद होमियोपैथी का नंबर आता है। उसमें कम-से-कम दवा दी जाती है। एक बड़े डाक्टर ने लिखा है कि दवा बिल्कुल ही न देना ठीक है। होमियोपैथी उसके बिल्कुल ही नजदीक आती है। अनेक औषधों का मिश्रण करने के बजाय एक शुद्ध औषध देना ठीक है। इसीलिए होमियोपैथी के लिए हमारे मन में कुछ आदर है। उसके बाद एलोपैथी की कुछ [illegible] का [illegible] और [illegible] पर तुरंत परिणाम लाती है, हम टाल नहीं सकते। [illegible] लगी हुई [illegible] है [illegible] हम [illegible] रहे हैं। यहाँ पर मैं सामाजिक दृष्टि से बात कहता हूँ [illegible] की दृष्टि से नहीं। [illegible] औषध का भार [illegible] होता है [illegible] समाज के लिए [illegible] औषध [illegible] अच्छा है।

विज्ञान सबके उपयोग की चीज है, तो उसे लोकभाषा में ही प्रकट होना चाहिए। आत्मज्ञान जब तक संस्कृत में था, आम समाज में नहीं पैठा। बाद में संतों ने उसे लोकभाषा में रखा। इससे अध्यात्म की बहुत सारी बातें धीरे-धीरे बालकों तक भी पहुँच गयीं। परमेश्वर, उसका अस्तित्व, उसके गुण, उसका नाम, मनुष्य, जीव, पुनर्जन्म, माया इत्यादि अनेक विषयों की चर्चा हमने बचपन में ही अपनी माता से सुनी। बाद में पुस्तकों के जरिये से पढ़ने को मिलीं। इस तरह जैसे बिल्कुल अशिक्षित बहनों के पास भी वेदान्त पहुँच गया, वैसे ही विज्ञान को भी पहुँचना चाहिए। संसार के सिवाय पृथ्वी, पानी, हवा आदि के गुण-धर्म, आहारशास्त्र, औषधि-विज्ञान आदि सारी चीजें मानव-जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं। अतः यह सब ज्ञान मातृभाषा में आना चाहिए। स्कूल-कॉलेजों में भी मातृभाषा के जरिये ही विज्ञान सिखाना चाहिए।

विज्ञान पढ़ाने के लिए अगर मातृभाषा में कुछ शब्द न हों, तो भी कोई चिंता नहीं। हम अंग्रेजी शब्द इस्तेमाल कर सकते हैं। दो भाग 'हाइड्रोजन' और एक भाग 'आक्सीजन' के संयोग से पानी बनता है, यह हिन्दी का वाक्य हुआ। इसमें दो शब्द अंग्रेजी के आये। परिभाषा के लिए अखिल भारतीय समिति बनेगी, तब देखा जायगा। जब तक वह नहीं बनती है, तब तक अंग्रेजी शब्द चलें, तो कोई हर्ज नहीं है।

अहिंसा और विज्ञान एक हों

अब विज्ञान तो बढ़ेगा ही, उसे रोकने का कोई उपाय ही नहीं है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा होनी चाहिए। अहिंसा के लिए हम विज्ञान की बहुत जरूरत मानते हैं। बीमारों को आपरेशन के लिए क्लोरोफार्म दिया जाता है। यह विज्ञान है। इससे मानव-जाति पर बड़ा उपकार हुआ है, बड़ा करुणा-कार्य हुआ है। पहले के जमाने में किसीका पेट दुखता था, तो थोड़ी-सी औषधि दी जाती थी और कुछ नहीं किया जा सकता था। लेकिन अब आपरेशन किया जा सकता है। पहले जमाने में आपरेशन करते समय मनुष्य को वेदना की तथा

अक्सर बाँधना पड़ता था। वह दयालु कार्य था फिर भी बड़ा क्रूर मालूम होता था। आज उसकी जरूरत नहीं है। क्लोरोफॉर्म की खोज हुई है यह करुणा है। ऐसी कई प्रकार की रचनात्मक शक्तियाँ विज्ञान के कारण हासिल होती हैं और मानव जाति का भार, दुःख कम होता है। इस दृष्टि से अहिंसा के लिए विज्ञान बड़ा ही वरदान है। विज्ञान के लिए भी अहिंसा वरदान है। अहिंसा न हो तो विज्ञान मानव जाति को खतम करेगा और अपने को भी खतम करेगा।

रोग-निवारण के उपाय

वैद्यकशास्त्र के बारे में मैं दो तीन बातें कहूँगा। पहली बात तो यह है कि रोग पैदा न होने देने के जितने उपाय हो सकते हैं उतना अच्छा। प्राकृतिक जीवन बढ़ना चाहिए, उसकी तालीम देनी चाहिए और कभी बीमारी पैदा हो जाय, तो प्राकृतिक उपचार किये जाने चाहिए। विशेष मौके पर गाँव में पैदा होनेवाली जड़ी-बूटी का उपयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से आयुर्वेद का महत्त्व है।

—प्रथम महत्त्व का है, प्राकृतिक जीवन।
—द्वितीय महत्त्व का है प्राकृतिक उपचार।
—तृतीय महत्त्व का है, आयुर्वेद।

आयुर्वेद के बाद होमियोपैथी का नंबर आता है। उसमें कम से कम दवा की बात है। एक बड़े डाक्टर ने लिखा है कि दवा बिलकुल ही न देना लाभ है। होमियोपैथी उसके बिलकुल ही नजदीक आती है। अनेक औषधों का मिश्रण करने के बजाय एक शुद्ध औषध देना ठीक है। इसीलिए होमियोपैथी के लिए हमारे मन में कुछ आदर है। उसके बाद एलोपैथी की कुछ विशेष दवाइयाँ या खास मौके पर तुरंत परिणाम लाती हैं हम छोड़ नहीं सकते। या आयुर्वेद मान्यता पायी हुई दवाइयाँ हैं उन्हें हम ले सकते हैं। यहाँ पर मैं सामाजिक दृष्टि से बोल रहा हूँ व्यक्ति की दृष्टि से नहीं। व्यक्ति औषध का मोह छोड़ सकता है, परन्तु समाज के लिए इस क्रम में आदर रहे तो अच्छा है।

विज्ञान सबके उपयोग की चीज है तो उसे लोकभाषा में ही प्रकट होना चाहिए। आत्मज्ञान जब तक संस्कृत में था आम समाज में नहीं पैठा। बाद में संतों ने उसे लोकभाषा में रखा। इससे अध्यात्म की बहुत सारी बातें धीरे धीरे बाल्कों तक भी पहुँच गयीं। परमेश्वर, उसका अस्तित्व, उसके गुण, उसका कार्य मनुष्य, जीव, पूर्वजन्म माया इत्यादि अनेक विषयों की चर्चा हमने बचपन में ही अपनी माता से सुनी। बाद में पुस्तकों के जरिये वे पढ़ने को मिलीं। इस तरह जैसे बिल्कुल आध्यात्मिक बातों के पास भी वेदान्त पहुँच गया वैसे ही विज्ञान को भी पहुँचना चाहिए। शरीर के विज्ञान, पृथ्वी पानी हवा आदि के गुण धर्म, आहारशास्त्र औषधि विज्ञान आदि सारी चीजें मानव-जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं। अतः वह सब ज्ञान मातृभाषा में आना चाहिए। स्कूल-कालेजों में भी मातृ भाषा के जरिये ही विज्ञान सिखाना चाहिए।

विज्ञान पढ़ाने के लिए अगर मातृभाषा में कुछ शब्द न हों तो भी कोई चिंता नहीं। हम अंग्रेजी शब्द इस्तेमाल कर सकते हैं। दो भाग 'हाइड्रोजन' और एक भाग 'आक्सीजन' के संयोग से पानी बनता है, यह हिन्दी का वाक्य हुआ। इसमें दो शब्द अंग्रेजी के आये। परिभाषा के लिए अखिल भारतीय समिति बनेगी तब देखा जायगा। जब तक वह नहीं बनती है, तब तक अंग्रेजी शब्द चले, तो कोई हर्ज नहीं है।

अहिंसा और विज्ञान एक हों

अब विज्ञान तो बढ़ेगा ही उसे रोकने का कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा होनी चाहिए। अहिंसा के लिए हम विज्ञान की बहुत आवश्यकता मानते हैं। बीमारों को आपरेशन के लिए क्लोरोफार्म दिया जाता है। वह विज्ञान है। उससे मानव-जाति पर बड़ा उपकार हुआ है, बड़ा करुण कार्य हुआ है। पहले के जमाने में किसी को दर्द होता था तो थोड़ी-सी औषधि दी जाती थी और कुछ नहीं किया जा सकता था। लेकिन अब आपरेशन किया जा सकता है। पहले छोटे मोटे आपरेशन करते समय मनुष्य को बेहद तक

चक्कर बाँधना पड़ता था। वह दयालु कार्य था फिर भी बड़ा कष्ट मालूम होता था। आज उसकी जरूरत नहीं है। क्लोरोफार्म की खोज हुई है यह करुणा है। ऐसी कई प्रकार की रचनात्मक शक्तियाँ विज्ञान के कारण हासिल होती हैं और मानव जाति का भार, दुःख कम होता है। इस दृष्टि से अहिंसा के लिए विज्ञान बड़ा ही वरदान है। विज्ञान के लिए भी अहिंसा वरदान है। अहिंसा न हो, तो विज्ञान मानव जाति को खत्म करेगा और अपने को भी खत्म करेगा।

रोग-निवारण के उपाय

वैद्यकशास्त्र के बारे में मैं दो तीन बातें कहूँगा। पहली बात तो यह है कि रोग पैदा न होने देने के जितने उपाय हो सकते हैं उतना अच्छा। प्राकृतिक जीवन बढ़ना चाहिए, उसकी तालीम देनी चाहिए और कहीं बीमारी पैदा हो जाय तो प्राकृतिक उपचार किये जाने चाहिए। जिसमें गाँव-गाँव में पैदा होनेवाली जड़ी-बूटी का उपयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से आयुर्वेद का महत्त्व है।

—प्रथम स्तर का है, प्राकृतिक जीवन।
—द्वितीय स्तर का है प्राकृतिक उपचार।
—तृतीय स्तर का है आयुर्वेद।

कोठरी के दरवाजे खोल दूँ। इससे जो मेरा है, वह सारी दुनिया का हो जाता है और जितना दुनिया का है, वह सब मेरा हो जाता है। सच्चा स्वार्थ इसीमें है कि हम सारे समाज की चिंता करें। इससे फलस्वरूप वह सारा समाज भी हमारी चिंता करेगा। स्वार्थ के विषय में इतनी सफाई होनी चाहिए।

परमार्थ-विचार

इसी तरह परमार्थ साधना के विषय में भी सफाई होनी चाहिए। 'हम अपने चित्त की शुद्धि करेंगे और आप अपने चित्त की शुद्धि करेंगे' ऐसा कहने से हम अलग पड़ जाते हैं और दूसरों को अलग कर देते हैं। हम समझने लगते हैं कि हमारा चित्त तो शुद्ध हो रहा है, लेकिन पड़ोसी का चित्त उतना शुद्ध नहीं हो रहा है। ऐसा सोचने से हमारे सिर पर अहंकार बैठ जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि साधक एक मंजिल चढ़ा और फिर नीचे गिर गया। अपनी शुद्धि करके मैं दूसरों से श्रेष्ठ हूँ यह भावना रखने से तो बेहतर था कि चित्त शुद्ध ही न होता! मैं उनके समान होता वही अच्छा था। मैं 'अपनी शुद्धि' करूँगा और वहाँ 'अपनी' भाषा आयी कि शुद्धि पर प्रहार हो गया। 'मेरी मुक्ति' कहते ही 'मेरी' शब्द 'मुक्ति' को खा जाता है। मुक्ति तो तब होती है, जब 'मेरी' छूटती है। इसलिए 'मेरी मुक्ति' यह कल्पना ही गलत है। 'मैं' 'मैं' के रूप में न रहकर समाज रूप हो जाय तभी मुक्ति होती है। मुक्ति यानी अहम् गिर जाय, अहंकार छूट जाय और समाज, सृष्टि और परमेश्वर ही रह जाय।

साधना समाज के लिए हो

समाज के लिए साधना करने का विचार आर्य संस्कृति का ही विचार है। गायत्री मंत्र का जप बहुवचन में [illegible] करने की बात है। उस मंत्र में भगवान् से प्रार्थना की गयी है कि हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे, 'धियो यो नः प्रचोदयात्'। यहाँ मेरी बुद्धि को प्रेरणा दे, ऐसा नहीं कहा गया है। इसी प्रकार 'भर्गो देवस्य धीमहि'—'हम परमेश्वर के तेज का ध्यान करते हैं' ऐसा कहा गया है, 'मैं ध्यान करता हूँ' ऐसा नहीं कहा गया। यद्यपि ध्यान तो अकेला करता है, परन्तु वह यही समझता है कि मैं समूह के अंश के तौर पर ही ध्यान

कर रहा हूँ। मेरा सामूहिक ध्यान चल रहा है। इसीलिए उसके मुँह से ये उद्गार निकलते हैं कि हम ध्यान कर रहे हैं। सर्वोदय में कोई एकांत में साधना करेगा तब भी वह सबकी मानी जायगी। कोई छोटी सी प्रयोगशाला में प्रयोग करता है तब भी उसे सारे समाज का प्रयोग समझता है। वैसे ही किसी विशेष मौके पर कोई एकांत में ध्यान भी करे तब भी वह य॰ समझे कि मैं सारे समाज के लिए कर रहा हूँ।

सर्वोदय का दुहरा विचार

सर्वोदय का दुहरा विचार है (१) मैं सर्व में हूँ। (२) सब मुझमें हैं। खाना पीना आदि जो काम मेरा माना जाता है वह भी मैं समाज के लिए कर रहा हूँ याने उससे भी समाज सेवा हो रही है और समाज की सेवा में मेरा शोध हो रहा है। इस तरह यह सर्वोदय का दुहरा विचार है। जैसा स्वार्थ का विचार व्यापक बन गया और उसकी शुद्धि हो गयी वैसे ही साधना भी व्यापक बननी चाहिए और उसकी शुद्धि होनी चाहिए। स्वार्थ के छोटे विचार की जगह व्यापक विचार आने से सबके स्वार्थ की बात बन जाती है। गाँव में चेचक की बीमारी आने पर कोई उससे अछूता नहीं रह सकता। उसकी छूत सबको लगती है। हम अक्सर कहते हैं कि 'जिसका कर्म उसका फल', परन्तु क्या वास्तव में ऐसा होता है? किसी मूढ़ ने बीड़ी पी और किसी घर पर फेंक दी तो सारे गाँव में आग लग जाती है। जिसका कर्म था और जिसे फल मिला? एक का कर्म सारे गाँव को मिला। इसलिए हम विचार शुद्धि करें और य॰ पहचानें कि सारे समूह में हम हैं और हममें सारा समू॰ है। एक मनुष्य ज्ञानी बनता है तो उसके अंश में सारा समूह ज्ञानवान् बनता है। इसलिए व्यक्ति और समाज की भिन्न भिन्न कल्पना करना गलत है। व्यक्तिगत कार्य सामाजिक दृष्टि से होना चाहिए और सामाजिक कार्य में प्रत्येक व्यक्ति के विकास का अवसर रहना चाहिए, यही सर्वोदय विचार है।

कुल जीवन साधनामय बने

हमारी पारमार्थिक साधना इतनी व्यापक बन गयी कि उसमें स्वार्थ आ जाता

है। एक वैराग्यवान मनुष्य ने एक दिन हमसे कहा कि मुझे दस रुपये चाहिए। मैंने पूछा किसलिए? उसने कहा कि मुझे आत्मज्ञान के लिए उपनिषद् की जरूरत है और उपनिषद् दस रुपये में मिलता है। इस तरह मेरे लिए उपनिषद्, उपनिषद् के लिए दस रुपये और दस रुपये के लिए क्या यह सवाल आया। फिर वह सवाल के चक्कर में पड़ गया। दस रुपये पैदा करने चाहिए— चोरी से या भीख माँगकर या कमाई करके। चोरी से या भीख माँगकर प्राप्त करे तो उपनिषद् पर प्रहार होता है और कमाई करने के लिए काम करे, तो उपनिषदों का अध्ययन रुकता है। फिर क्या करे, यह सोचने की बात है। हम अपने लिए सोचते हैं तो इस तरह की मुश्किल में आ जाते हैं। पुराने लोग भजनमय जीवन व्यतीत करना चाहकर भी श्रम नहीं छोड़ते थे। वे कुछ न कुछ काम करके आजीविका संपादन करते थे और उससे बचे हुए समय में भजन करते थे। दूसरों पर बोझ न हो, इसलिए वे श्रम करते थे। अपने लिए ध्यान, भजन साधना और रोटी के लिए मेहनत। अब यह सवाल है कि जैसे भजन आदि साधना है वैसे खेत में काम करना साधना है या नहीं? अगर इसका उत्तर 'हाँ' है, तो ठीक है, नहीं तो जीवन के दो टुकड़े हो गये। पेट के लिए दिनभर काम किया और जब काम पूरा हुआ तब साधना आरम्भ हुई। इस तरह साधना का समय और पेट भरने का समय, ऐसे दो टुकड़े हो गये। फिर इच्छा यह रहती कि पेट भरने का काम कम से कम समय में हो जाय, तो अच्छा है। खेत में काम करके पेट भरेंगे तो वह नहीं होगा, ज्यादा समय देना पड़ेगा। उसके बजाय स्पेक (याहलिस्ट) का काम किया जाय तो दो पैसे [illegible] हैं। इस तरह समय बचाने की इच्छा होने पर एक पेशा ढूँढ़ा जाता है, जिसमें कम से कम समय लगे। सब लोग ऐसा विचार करेंगे तो क्या होगा? फिर जिन चीजों में ज्यादा समय लगता है वह कौन करेगा? इस तरह से बिल्कुल स्वार्थी विचार हो जाता है। अब यह समझना चाहिए कि मैं खेत में काम करने के लिए जाता हूँ सो पेट भरने के लिए नहीं जाता। कृषि-काम अपने लिए नहीं करता, समाज के लिए करता हूँ। इसलिए उस काम की उतनी ही

उपयोगिता है जितनी मक्खन की है। खेत में मैं जो काम करता हूँ, वह सारा मेरे लिए ब्रह्ममय है। मैं हाथ में कुदाली लेता हूँ वह ब्रह्म है। जिस जमीन की सेवा करता हूँ वह ब्रह्म है, उसमें से जो अन्न पैदा होगा वह ब्रह्म है। जिस समाज को वह अर्पण होगा वह ब्रह्म है और उसके प्रसादस्वरूप हम पेट में जो कुछ जायगा वह भी ब्रह्म है। इस तरह जहाँ कुल का कुल जीवन साधनामय होगा वहीं मनुष्य जीवन की विसंगति मिटेगी।

मेरा स्वार्थ और समाज का स्वार्थ एक है। समाज की सेवा ही मेरा स्वार्थ है। मेरा अपना स्वतंत्र स्वार्थ नहीं है। मेरी साधना और समाज-सेवा एक है। समाज सेवा में मेरी साधना हो जाती है। 'मेरी' नाम की कोई स्वतंत्र साधना नहीं है। मेरा लोप होना ही साधना है। इस तरह सर्वोदय विचार में जीवन की विसंगति मिट जाती है, समाज और व्यक्ति के स्वार्थ के भेद मिट जाते हैं और स्वार्थ की वृत्ति तथा साधना वृत्ति यह भी भेद मिट जाता है। इसलिए सर्वोदय विचार अत्यन्त निर्दोष और व्यापक है। उसमें आर्थिक विषमता खत्म होती है, सामाजिक विषमता खत्म होती है। स्वार्थ परमार्थ का भेद मिथ्या है।

नकद चाहिए, उधार नहीं

कहा जाता है कि मरने के बाद स्वर्ग या नरक मिलता है। परन्तु इस तरह मरने के बाद उधार क्यों? आज गुड़ खाया तो मरने के बाद आनन्द मिलेगा ऐसा नहीं होता। आनन्द उसी समय मिलता है। वैसे ही इसी जिन्दगी में आनन्द आना चाहिए। मरने के बाद स्वर्ग की बात क्यों करते हैं? कम्युनिस्ट लोग भी ऐसी ही बात करते हैं। वे भविष्यवाणी करते हैं कि अन्त में राज्य का विसर्जन होगा और बहुत सुन्दर समाज निर्माण होगा। आज? आज तो सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकवाद है। माने राज्य का विसर्जन होगा यह है उधार और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद और मजबूत केंद्रीय सरकार यह नकद। उधार की बात भविष्य पर छोड़ दी गयी है। इधर साधकों ने भक्तों ने कहा है कि मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। कम्युनिस्ट कहते हैं कि भविष्य

गिर रही है। वह तुझे सूझा नहीं। मूँगफली नीचे गिरती गयी, तू खाता गया और फिर भी कहता है कि भगवान् ने मुझे बचाया! यह तो नास्तिकता है। वहाँ असत्बुद्धि हुई। वहाँ भगवान् ने क्या बचाया? इस तरह जैसे स्वार्थ संकुचित बना, वैसे परमार्थ भी संकुचित बना। हम इन सबका संशोधन करना चाहिए। सर्वोदय में इसका संशोधन होता है।

समूह-सेवा ही हमारा धर्म और कर्म

आपका इतना बड़ा शहर है, लेकिन यहाँ हर मनुष्य अपनी ही सोचता है। गाँव में एक भी मनुष्य दुःखी नहीं रहना चाहिए, इस तरह नहीं सोचते। हम अपने लिए सोचते हैं तो बस है, इस तरह नहीं मानना चाहिए। पाँव में फोड़ा हो और बाकी सारा शरीर अच्छा हो तो भी मैं सुखी नहीं रहता। एक दुःखी अवयव के कारण मैं दुःखी हो जाता हूँ। वैसे ही शहर में एक भी मनुष्य दुःखी हो तो सबको दुःखी होना चाहिए। इसलिए सारे समूह की सेवा करना ही हमारा धर्म और कर्म होना चाहिए। इस बात को आप समझेंगे, तो शांति सेना, सेवा सेना आदि की बात बिलकुल मामूली हो जायगी। अगर अगर कुछ लोग समूची चिंता करनेवाले हो जायेंगे तो सब भला ही भला होगा।

बैंगलोर
११-१०-५७

मानव-धर्म का भवन निर्माण आवश्यक १२

'धर्म मे अवलम्ब नित्य सेवा'—धर्म की जय हो, ऐसा पुरस्कार कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के सभी लोग धर्म का बहुत नाम लेते हैं, उस पर श्रद्धा भी रखते हैं, लेकिन उसकी जय नहीं दीख रही है। बीच में थोड़ा-सा धर्म प्रकट हुआ तो स्वराज्य प्राप्त हुआ, जय हुई। तब यह अनुभव आया कि जितना जितना धर्म का उदय होगा, उतनी उतनी जय होगी। अभी इस देश में दुःख है, गरीबी है,

चली गयी। तब फिर खादी आ गयी तो अब वह नहीं जायगी। सामने मिलें पड़ी हैं फिर भी पहननेवाले विचारपूर्वक खादी पहनते हैं। पहले 'लाचारी की खादी' थी अब 'विचार की खादी' है। यह मिल से टक्कर ले सकती है।

इसी तरह पहले जो धर्म का मकान बनाया वह श्रद्धा के आधार पर बनाया। श्रद्धा पर आघात आते ही वह मकान गिर गया। विज्ञान के जमाने में अब यह मकान विचारपूर्वक बनेगा तो गिरेगा नहीं। पुरंदरदास का एक भजन है। उसमें वे कहते हैं कि तुम लोग माता पिता की आज्ञा नहीं मानोगे, तो तुम्हारी चमड़ी छीली जायगी और तुम्हारा गला घोंट दिया जायगा। क्या ऐसे आधार से धर्म टिकेगा? मरने के बाद मारे जायेंगे, पीटे जायेंगे; लेकिन विज्ञान पूछता है कि कहाँ है वह यमालय? प्रयोगशाला में खूब परीक्षण किये, फिर भी न यम का पता चला और न यमालय का। इन यमालय के आधार पर धर्म कैसे टिकेगा? भय या लोभ पर आधारित धर्म टिक नहीं सकता। मरने के बाद अप्सरा मिलेगी तो इस लोक में ब्रह्मचारी क्यों रहें? क्या इस प्रकार ब्रह्मचर्य टिकेगा?

धर्म का वैज्ञानिक आधार हो

धर्म विचार अच्छा है, पर उसके पीछे श्रद्धा का और भोलेपन का आधार है, वैज्ञानिकता का नहीं। हम अब वैज्ञानिक आधार पर इस मकान को खड़ा करेंगे और बच्चों से कहेंगे कि "ऐ बच्चो, तुम अभी छोटे हो। तुममें स्वतंत्र बुद्धि नहीं आयी है। इसलिए यदि तुम माता-पिता की बात न मानोगे, तो उनके अनुभवों का फायदा न मिल सकेगा। तुमने माता पिता का प्रेम पाया है। अब तुम ही उनसे प्रेम न करोगे, तो कौन तुमसे प्रेम करेगा? तुम्हारे बच्चे तुमसे प्रेम करेंगे? इसलिए माता पिता से प्रेम करना ठीक होगा। वैज्ञानिक जमाने के लड़के हमसे पूछेंगे कि हम माता पिता की सेवा करना तो कबूल करते हैं, पर मान लीजिये कि माता पिता हमसे कोई गलत बात करने के लिए कहें, तो क्या हमको वह बात माननी चाहिए? इसका जवाब यही हो सकता है कि

स्वतन्त्र बुद्धि आने के बाद माता पिता की आज्ञा मानने की जिम्मेवारी बच्चों पर नहीं है लेकिन सेवा करने की जिम्मेवारी है। सेवा करने की जवाबदारी होने से माता पिता की आज्ञा मानने का धर्म पक्का हो गया। हमको बचपन में घर वालों ने कहा कि चोटी को गाँठ बाँधना चाहिए, न बाँधने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। हमने पूछा : तब ब्रह्महत्या करने से कौनसा पाप लगता है? उत्तर ही न मिला। तब हम क्यों चोटी बाँधते? यदि हमें कहा जाता कि गाँठ न बाँधने से आँख पर बाल आते हैं और उससे आँख खराब हो जाती है, तो हम उनकी बात मान लेते।

तुलसीदास ने क्या कहा है :

को जाने को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को॥

—राम मैं कौन जायगा यमपुरी में कौन जायगा यह कौन जानता है? इसलिए इसी जीवन में राम का दास होकर रहना तुलसीदास को पसंद है। अच्छी कृति का परलोक में फल मिलेगा ऐसे आधार से वैज्ञानिक युग में धर्म नहीं टिकेगा। यहाँ फल बताना चाहिए। गुड़ खाओगे, तो मरने के बाद मीठा लगेगा। ऐसा क्यों? अभी गुड़ खाओ तो अभी मीठा लगेगा। आप रोज व्यायाम करते हैं, उसका परिणाम है आरोग्य। क्या मरने के बाद आरोग्य बढ़ेगा? ऐसी बात नहीं है। इस प्रकार साक्षात् अपरोक्ष फल बताना चाहिए, जो विज्ञान के युग में टिक सके। वैर से वैर बढ़ता है। प्रीति से प्रीति बढ़ेगी। प्रीति का फल बताया तो समाज समझ सकता है और उसका पालन हो सकता है। उसका पालन नहीं होगा तो हिंसा बढ़ेगी। हिंसा के परिणामस्वरूप हाइड्रोजन बम वगैरह पैदा होंगे। यह प्रत्यक्ष फल है।

ग्रामदान उधार धर्म नहीं

नगरों में मिलकर एक होकर ग्रामदान करना चाहिए। ग्रामदान देंगे, तो कुबेर के भवन में बड़ा स्थान मिलेगा ऐसा बाबा नहीं कहता। बाबा कहता है कि

ग्रामदान होंगे तो इसी गाँव में इसी जन्म में आनंद का अनुभव आयेगा। प्यासा आपके घर आया। आप उसको प्रेम से पानी पिलाते हैं, तो प्यासे को सुख होता है। उधार है या नकद? प्यासे को पानी पीने से सुख हुआ। लेकिन इसमें पानी पीनेवाले से ज्यादा सुख जिसने पानी पिलाया उसको होता है। इसी प्रकार अपरोक्ष आधार से बना हुआ धर्म का मकान विज्ञान युग में टिकेगा।

ग्रामदान भूदान सर्वोदय ये प्रकल्प चल रहे हैं। इसमें प्रत्यक्ष के आधार पर धर्म का मकान बनेगा। यदि लोगों ने कबूल न किया तो नहीं बनेगा। लेकिन बनेगा, तो गिरेगा नहीं। इसलिए लोग जल्दी कबूल नहीं करते तो हमको रंज नहीं होता। क्योंकि हम जानते हैं कि जो बात हम कहते हैं, वह वैज्ञानिक है। विज्ञान से प्रत्यक्ष फल मिलेगा।

मायसंद्रा
३.११.५७

अभी धर्म बना नहीं : १३ :

धर्म पचास नहीं हो सकते। मानव के लिए एक ही धर्म हो सकता है और वह है मानव धर्म। मानव धर्म से ही व्यक्ति और समाज को आश्रय मिलता है।

शरीर-श्रम धर्म कब बनेगा?

आपने यहाँ बसवण्णा स्वामी ने कायिक धर्म बताया है। उन्होंने कहा है कि हरएक मनुष्य को चाहे वह छोटा हो या बड़ा शरीर-श्रम करना चाहिए। इस समय करोड़ों लोग शरीर श्रम करते हैं, बसवण्णा स्वामी के जमाने में भी करते थे। तब फिर उन्हें कायिक धर्म बनाने की क्या जरूरत थी? इसका अर्थ यह है कि जो लोग शरीर श्रम करते थे या करते हैं उसमें लाचारी है। लाचारी धर्म विचार कैसे बन सकती है? आप कहते हैं कि कायिक धर्म का पालन करने से इस लोक में लाभ हो या न हो, परलोक में अच्छा फल मिलेगा। ऐसा कहने से

अन्न काविल श्रम नहीं मिलेगा। वह तो तब मिलेगा जब शरीर श्रम को भी उतना ही आर्थिक मूल्य मिलेगा जितना दूसरे कामों के लिए मिलता है। श्रमिक को गौरव देने के लिए उसको ऊंची सामाजिक प्रतिष्ठा बनानी चाहिए और उसका शुभ पक्ष इसी ओर में मिले, ऐसी योजना बननी चाहिए।

धर्म एकांगी न रहे

चोरी करना गलत है, यह धर्म विचार है। लेकिन रास्ते में सोने का गहना पड़ा मिल जाय, तो आप उसे चुपचाप उठा लेते हैं या नहीं? यदि आप उसे उठाकर रख लेते हैं तो चोरी करने की वृत्ति लोगों में आयेगी ही।

चोर दो प्रकार के होते हैं—प्रमाणित और अप्रमाणित। साहूकार, जैंटिलमैन सभ्य नागरिक आदि सभी चोरी को पाप मानते हैं। वे मानते हैं कि चोर को सजा मिलनी चाहिए। लेकिन सवाल तो यह है कि चोर को सजा मिलनी चाहिए या चोर के बाप को? जो संग्रह और संग्रह करनेवाले साहूकार हैं, वे चोर के बाप हैं। उन्हें प्रतिष्ठा मिलती है। संग्रह करना पाप नहीं है, तो चोरी करना पाप कैसे हो सकता है? इस प्रकार एकांगी धर्म खड़ा करना चाहते हैं, तो वह नहीं होगा। चोरी पाप है तो संग्रह भी पाप है। इस तरह दोनों विचार मिलकर धर्म बनेगा। शांति के लिए जो श्रम हो, उसकी सारे समाज में प्रतिष्ठा होनी चाहिए और समाज की रचना भी तदनुसार करनी चाहिए।

धर्म के लिए तीन आवश्यक बातें

(१) एकांत के आधार पर धर्म नहीं टिक सकता। (२) धर्म परिपूर्ण होना चाहिए एकांगी नहीं। (३) धर्म मोक्ष के लिए पर्याप्त नहीं है, तदनुसार समाज बनाना होगा तब सारे समाज में उसकी प्रतिष्ठा होगी। ये तीन बातें रहेंगी तो धर्म का मकान बनेगा। यह बात महापुरुषों ने कोशिश की लेकिन वे सफल नहीं हुए। अब हमको आगे जाना है। विज्ञान के जमाने में यह हो सकता है। अब यदि धर्म नहीं टिकेगा तो हम भी नहीं टिकेंगे। हमारे टिकने के लिए धर्म की स्थापना यहाँ होनी ही चाहिए। ऐसा न करेंगे, तो आगे न धर्म टिकेगा, न हम टिकेंगे। विज्ञान के कारण ऐसी नौबत आयी है। अब मानव घर बैठे बैठे

पक्की अहिंसा की तैयारी

गीता में कहा है 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'—जहाँ जाने पर वापस लौटना नहीं होता। इसी तरह हिंसा का स्थान लेनेवाली अहिंसा पक्की अहिंसा होगी। क्योंकि हिंसा के परिपूर्ण प्रयोग के बाद और पूर्ण समाधान के बाद ही वह छूटेगी। अभी तक क्या होता आया है? हिंसक लोगों में असमाधान होता था, तब इन्कार होती थी। यश नहीं मिलता था, तो वे सोचते थे कि इतनी हिंसा काफी नहीं, और बढ़ानी चाहिए। फिर भी हार होती तो सोचते कि यह-यह कमी रही। इसलिए और भी अच्छे अच्छे आकार तैयार करने चाहिए। इस तरह हिंसा की पूर्णता होती गयी। अब अहिंसा का आरम्भ किया जायगा। फिर सब धर्मग्रन्थ गीता बाइबिल घर घर में हृदय-हृदय में होंगे। ये केवल पुस्तक ही नहीं रहेंगी मन के अन्दर होंगी। इसलिए ये बच्चे भी स्टेनगन का मुकाबला बड़ी शांति से करेंगे। कोई मूर्ख बन्दूक मशीनगन लेकर आये, तो लड़के कहेंगे "देखो चाचा देखो तो कि यह कैसी [illegible] लगा है! उसके पास पिस्तौल भी है।" ऐसा कह कर वे उसका देखने जायँगे। छाती में धड़कन नहीं होगा। लोगों को ज्ञान हो गया है कि शरीर का कुछ महत्त्व नहीं है उसकी कुछ कीमत नहीं है। इतना तो हिरोशिमा ने सिखा दिया है। एक बम से लाखों लोग मरते हैं इसका मतलब क्या है? हमें शरीर से पृथक् होने का ज्ञान मिलेगा और फिर मन से आत्मचिन्तन करना पड़ेगा। इस तरह पक्के का दर्शन होगा।

कुछ लोगों का ख्याल है कि यह कैसे होगा? [illegible] भी [illegible] में यह नहीं चलेगा। यह सच है कि बाबा से नहीं चलेगा परन्तु बच्चों से चलेगा। हम पुराने लोग आधुनिक [illegible] पूरा नहीं जान सके। लेकिन आज के बच्चे भी [illegible] लगते हैं। इस तरह हिंसा का पराजय हिंसा-शक्ति के उत्कर्ष से जब मानव के दिल में बैठ जायगा तब बच्चा-बच्चा निर्भय बनेगा। इस निर्भयता की हमें आज कल्पना भी नहीं आयेगी।

कलपीकेरे
८ ११ ५०

भारतभर के गांधी-परिवार के कमरागी सेवकों से मिलने का मौका हमें मिला, इससे बहुत आनन्द होता है। 'गांधी परिवार' इस शब्द का उपयोग हमने केवल गौरव के लिए नहीं किया है और न गांधीजी के स्मरण के लिए ही किया है। सेवकों का गौरव तो उनकी सेवा में ही होता है। गांधीजी का स्मरण भी हम सतत करते रहते हैं। इसके उस स्मरण की भी हमें इतनी आवश्यकता नहीं मालूम। यहाँ 'गांधी-परिवार' शब्द हमने विचार के नाते रखा है। एक विचार हमें सूझ रहा है जिसे निरंतर सत्याग्रही मालूम हो रहा है और उसी विचार की प्रेरणा से आप सब लोग यो अपने-अपने क्षेत्र में काम कर रहे हैं। 'गांधी परिवार' शब्द का प्रयोग करके हमने अपना यही विश्वास जाहिर किया है।

नया विचार का अर्थ

हमें एक नया विचार मिला है। उस विचार का क्या अर्थ है ? जीवन तो यहीं है—मानव-जीवन—इन्द्रिय प्रधान, देह प्रधान वासना प्रधान भावना प्रधान। इन सबसे परे भी एक चीज है, जो नित नया रूप लेकर मानव जीवन को छूती है, उसमें प्रवेश करती है, उसके चारों ओर फैलती है और उसमें परिवर्तन लाती है। उसीको हम 'विचार' कहते हैं। कुछ व्यक्ति निमित्तमात्र होते हैं, जिनसे उस विचार का उद्गम तो मैं नहीं कहूँगा प्रथम प्रकाशन होता है। विचारों का उद्गम तो मानव के सामान्य मानस में विशिष्ट परिस्थिति के कारण होता है। परन्तु उसका प्रथम प्रकाशन किसी व्यक्ति से होता है। किसी नये विचार का प्रकाशन होने पर फिर पुरानी कोई भी चीज उसी रूप में नहीं आती। वही खाना वही पीना वही भाषा वही व्यवहार और वे ही शब्द रहने पर भी उनके पुराने अर्थों की छाप कायम नहीं रहती। जैसे 'दया' शब्द है। यह बहुत व्यापक और ऊँचा शब्द है। तुलसीदास ने 'दया धरम का मूल' कहा है। इसमें कोई शक नहीं कि दया की बुनियाद पर ही मनुष्य का सामा-

सिद्ध जीवन खड़ा हो सकता है। फिर भी पहले से दया का जो अर्थ होता आया है वह अब नव विचार के बाद मान्य नहीं होता। इसी तरह कोई भी पुराना शब्द जो मूल्यवान् अर्थ को प्रकाशित करता था करता है नव विचार के बाद वैसा का वैसा नहीं टिकता। वहाँ पुराने शब्द ही नहीं उन शब्दों के अर्थ भी बदलते हैं और उनमें ही कुछ सुधार की आवश्यकता महसूस होती है वहाँ नया विचार नहीं है। सुधार के रूप में कुछ फरक कर लेना दूसरी बात है और नया विचार दूसरी बात है। गांधी परिवार के लोगों को यह विशेष रूप से समझ लेने की जरूरत है कि नया विचार पुराने किसी भी पवित्र शब्द को उसकी पवित्रता मान्य करते हुए भी वैसा का वैसा ग्रहण नहीं करता। इतना परिवर्तन जानेंगे। हमें एक नया विचार मिला है, ऐसा जब भास होगा तभी हम उसके पात्र साबित होंगे।

धर्म विचार का विकास

'हम सब पर प्रेम करें और सब हम पर प्रेम करें', 'मित्र की निगाह से हम दुनिया को देखें और मित्र की निगाह से ही दुनिया हमें देखे' एक वाक्य वेद में आते हैं। वेद बहुत पुराना ग्रन्थ माना जाता है। इसलिए मैंने इसका नाम लिया। वह प्रेम का विचार है। इसकी महिमा सभी धर्मों ने गायी है। हम और दुनिया एक दूसरे को प्रेम की नजर से देखें। हम प्रेम करेंगे तो दुनिया हम पर प्रेम करेगी ऐसी यहाँ अपेक्षा है। दुनिया अगर हम पर प्रेम नहीं करती है, तो हमें क्या करना चाहिए, इसका निर्णय इसमें नहीं है। दुनिया की तरह हम प्रेम की निगाह से देखें ऐसा जिसे सूझा उसे यह एक नव विचार के तौर पर सूझा। तभी जिसे धर्म कहते हैं उसका आरम्भ हुआ। उसमें पहले धर्म नाम की चीज ही नहीं थी।

विचार का विकास हुआ। एक शख्स आया—भगवान् बुद्ध। उन्होंने कहा : वैर से वैर शान्त नहीं होता। अक्रोध से क्रोध को और प्रेम से ही वैर को जीतना चाहिए। इससे सारा का सारा पुराना चित्र बिलकुल ही बदल गया। उनके बाद एक और शख्स आया—ईसामसीह। उन्होंने कहा : दुश्मन पर प्यार

करो। बहुत बहुत सरल हो गया। 'दुश्मन के साथ द्वेष न करो' ऐसा नहीं, 'दुश्मन को प्रेम से जीतो' ऐसा भी न कहकर यह सख्त ऐसा कहनेवाला नियम कि 'दुश्मन पर प्यार करो'।

'दुश्मन पर प्यार करो' इसे ईसाई लोग उत्तम व्यक्ति के लिए उत्तम धर्म के तौर पर मानते हैं। वे कहते हैं कि सामान्य मानव के लिए सामान्य धर्म के तौर पर यह अपेक्षित नहीं है। एक व्यक्ति 'परफेक्ट' हो सकता है। उसे यह कहा कि दुश्मन पर प्यार करो। यह ठीक है, लेकिन समाज के लिए क्या? जब समाज पूर्ण अवस्था में आयेगा तब समाज के लिए भी यही चीज लागू होगी। लेकिन तब तक प्राप्त परिस्थिति में काम करना होगा इसका निषेध यहाँ भी नहीं है।

तब आये गांधीजी। वे पुराने समाज में ऐसे ही पैदा हुए, जैसे बुद्ध भगवान। गांधीजी जिस परिस्थिति में आये, उस समय भारतवर्ष निःशस्त्र था। यह सारी दुनिया के इतिहास में एक अद्वितीय घटना थी। ऐसे मौके पर गांधीजी ने जो आयोजन किया वह अत्यन्त सफल होते हुए भी असफल हो गया। उन्होंने कहा : दुश्मन पर प्यार करो यह बात केवल व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। आप पर सामूहिक हमला होता हो तब भी यही बात लागू होनी चाहिए। दुश्मन के समूह के लिए भी हमें प्रेम करना है। गांधीजी ऐसा दावा करते थे। हम सब लोग उनके पीछे रामनाम की तरह बोलते थे और कभी न मानते थे तब भी उनके पीछे चलने का प्रयत्न करते थे। वे कहते थे कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह भारत के प्रेम से ही प्रेरित नहीं इंग्लैण्ड के प्रेम से भी प्रेरित है। उन्होंने अखबार आदि भी शुरू किया वह सब प्रेम से प्रेरित होकर ही किया। हम उनका जैसा प्रेम रखते भी थे। वह किसी मनुष्य है या अंग्रेजी ऐसा भाव उनके मन में नहीं था। हमने उनके साथ रहकर देखा है कि वे सब लोगों के साथ बिल्कुल ऐसा व्यवहार करते थे जैसे अपने परिवार के किसी व्यक्ति के साथ किया जाता है।

नये विचार के अनुकूल चिंतन हो

हमें गांधीजी के इस नये विचार को व्यापक बनाना है। खादी ग्रामोद्योग नयी तालीम अछूतोद्धार इत्यादि जो भी रचनात्मक काम हों उन सबका परिणाम यह होना चाहिए कि इस नए विचार को फैलाने में मदद मिले। यह मूल वस्तु अगर हम छोड़ देते हैं, तो फिर खादी-ग्रामोद्योग इत्यादि काम केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित रह जायेंगे। सूत कातने की बात हो खादी की उम्र बढ़ाने की बात हो तो यह सब समाज-सुधार के लिए जरूरी है। आर्थिक स्तर भी ऊँचा करने की जरूरत है। परन्तु जब हम उसी स्तर पर आ जाते हैं तो हम हारने वाले हैं! यन्त्रवाद का एक अंग ऐसा है कि हम यन्त्रों को नहीं टाल सकते। उसका उपयोग करना चाहिए। इस विषय में अभी हम लोगों में चर्चा कम ही रही है। आज यन्त्रों का सवाल है। कल अणुशक्ति का सवाल आयेगा। अणुशक्ति भारी अच्छी तरह से नियन्त्रित हो सकती है। उसे आर्थिक कसौटी पर कसकर ही हमें निर्णय करना है, तो फिर आर्थिक नियमों के अनुसार आपको चलना होगा। आर्थिक नियम देश काल परिस्थिति आदि के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ नियम ऐसे भी हैं जो नहीं बदलते। इन सब नियमों को मान्य करके आपको चलना होगा। पर हर बात में आप अगर यही कसौटी लगायेंगे, तो हमारे इस नए विचार के लिए यन्त्रों का प्रयोग किस तरह अनुकूल होगा, किस तरह प्रतिकूल होगा आदि सारी बातें ध्यान में आ जायेंगी। आर्थिक दृष्टि से भला बुरा दोनों ध्यान में आने से आर्थिक समाधान में ठीक दिशा मिलेगी और उसमें नये विचार को अमल में लाने की बात भी सूझेगी।

गांधीजी के त्रिविध आदर्श

गांधीजी एक विचार हैं व्यक्ति नहीं। यह अगर हम नहीं समझते हैं तो हम गांधीजी पर बहुत अन्याय करते हैं। उनके विचारों को अगर उनके दर्शन और उनकी कृतियों में हम सीमित कर देंगे, तो हम उनके प्रति अन्याय करेंगे। उन्होंने स्पष्ट कह रखा है।

—मेरे पुराने शब्दों से मेरे आगे का शब्द प्रमाण समझो। पुराने और नये दोनों में अगर कहीं विरोध आता हो तो पुराने शब्द छोड़ दो।

—मेरे शब्दों के साथ मेरी कृति का विरोध आये, तो मेरी कृति को गौण समझो और शब्दों को प्रमाण समझो।

—अपने भाव मैं अपने शब्दों में पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर सका हूँ, इस लिए मेरे भाव समझ लो और शब्दों को गौण मानो।

इस तरह उन्होंने विविध आदेश दे दिया। अब इससे आगे क्या कहने को बाकी रह गया? हमें गांधीजी के विचारों को उनके शब्दों और उनकी कृतियों से सीमित नहीं करना चाहिए। उनका भाव लेकर आगे बढ़ें।

सर्वोदय का यह नया विचार, गांधी विचार, की प्रेरणा से निर्माण हुआ है। लेकिन उनकी कृतियों और शब्दों से परे है। हम इस विचार से प्रेरित हैं और इसके लिए जो भी कुछ कर सकते हैं कर रहे हैं। उनकी सहानुभूति हासिल करना हमारा कार्य है। किन्तु इस पर भी विरोधी ढंग मिले, तब भी हमें प्रेम करना है और इसीलिए हम विरोध पर रहे हैं।

हमारी जिम्मेवारी

लोग हमसे पूछते हैं कि क्या आप गांधीजी से आगे बढ़ गये? हमें अत्यन्त नम्रता के साथ यह उत्तर देना चाहिए कि हाँ बढ़े हैं। गांधीजी से आगे बढ़ने और न बढ़ने का फैसला तो भगवान् करेगा। वह हमारे हाथ में नहीं है। हम उनसे बढ़ने की जरूरत भी नहीं है। लेकिन इतना जरूर समझना चाहिए कि हमारा जमाना उनके जमाने से आगे है। हमारे सामने नये दर्शन उपस्थित हैं। अगर हम इतना नहीं समझते तो जो कार्य करने की जिम्मेवारी आप और हम जैसे गांधी विचार माननेवालों पर आ पड़ी है उसका हम पालन नहीं कर सकेंगे।

पाँच छह साल पहले की बात है। पूना के नजदीक कहीं सेना का शिविर खोलने के लिए प. नेहरू गये। वहाँ उन्होंने एक व्याख्यान दिया। उसके उपरान्त वह अमेरिका गये। वहाँ उन्होंने अहिंसा पर व्याख्यान दिया। इस

चाहिए कि वह हमें दीक्षा देने आया है। बच्चों को लगना चाहिए कि वह मध्यम गुरुजी है और रोगियों को लगना चाहिए कि वह हमारी सेवा करनेवाला है। इस तरह जिस जिस प्रकार की अपेक्षा लोगों ने रख रखी है, उन सबको लगना चाहिए कि अपने-अपने लिए लायक मनुष्य आया है। इसलिए अब हममें से कोई शख्स ऐसा नहीं होना चाहिए कि जो यह कहे कि मैं भूदान-प्रचारक, ग्रामदान प्रचारक, खादी प्रचारक आदि हूँ।

मैंने एक दिन मिसाल देकर कहा कि सृष्टि में जंगम और स्थावर दो तरह के जीव हैं। इसी तरह हमारे सेवक भी कुछ जंगम और कुछ स्थावर होने चाहिए। जहाँ कहीं भी हमारी संस्थाएँ हों, वहाँ कुछ सेवक स्थावर रहें। उन्हें तालीम देना है, जीवन बनाना है, विद्यार्थी का संशोधन करना है। वे शान्ति-सेना के संयोजन की प्रयोगशाला बनें। उनके लिए आसपास का क्षेत्र तैयार करना है। स्थावर को अनुकूल बनाना है, इसलिए संस्था की ओर से जंगम सेवक घूमते रहने चाहिए।

लोक-सम्मति प्राप्त करें

आज तक हमने जितने काम किये वे सब आज्ञा से किये। जहाँ खादी-काम करना था किया। जिन लोगों को इससे मदद मिली वे प्रसन्न हो गये। उसी साथ के दूसरे काम सफल भी रहे। हमने उनकी सम्मति नहीं ली। सरकार के जरिये कुछ न कुछ लाभ मिलेगा, ऐसा लोग क्यों मानते हैं? इसलिए कि सरकार सम्मति के आधार पर खड़ी होती है। पर हम कहीं भी जाते हैं, तो लोक-सम्मति नहीं लेते। वहाँ या तो अपनी आध्यात्मिक श्रद्धा से काम शुरू कर देते हैं या किसी विधि के आधार पर काम शुरू कर देते हैं। पर अब सारे भारत के अपने काम के लिए हम जनता की सम्मति हासिल करनी चाहिए। अगर हम यह कहें कि रचनात्मक कार्यकर्ता और कार्यों में बँधे हुए हैं, संस्था में लगे हुए हैं और वे इस कारण लोक-सम्मति प्राप्त करने का कार्य नहीं कर सकते तो जनता की सम्मति हासिल करने की सारी जिम्मेदारी हम राजनीतिक दलों पर छोड़ देते हैं, उनके पराधीन हो जाते हैं।

वोट और सम्मतिदान का अन्तर

राजनीतिक दलवाले वोट लेते हैं और हम लोक-सम्मति प्राप्त करते हैं, तो इन दोनों में क्या फर्क है। उनका वोट निष्क्रिय होता है। वह वोट उन पर कोई जिम्मेदारी नहीं डालता। उन्होंने वोट देकर सत्ता के हाथ में जिम्मेदारी सौंपी। फिर सत्तावाले लोग कहते हैं कि अब हमें आपका सहयोग हासिल होना चाहिए। लोग कहते हैं कि जब हमने वोट देकर आपके हाथ में सत्ता दे दी तो हमारा सहयोग हासिल हो चुका। अब हमसे ज्यादा सहयोग आप क्या चाहते हैं ? अब आपके हाथ में सत्ता है। आप चाहें तो आदमी रख सकते हैं सेवक रख सकते हैं योजना बना सकते हैं। आप यह सब करिये। आपका काम अच्छा होगा तो हम फिर पाँच साल के लिए आपको चुनेंगे और आप अच्छा काम न करेंगे, तो आपको वहाँ से हटायेंगे। याने पार्टीवाले अधिकृत बन गये। फिर जनता अपना काम करने लगती है। किसान खेती करता है मजदूर मजदूरी करता है, व्यापारी धन्धा करता है गृहस्थ बाल-बच्चों का पोषण करता है। बाकी का काम सौंपा गया है, वह पार्टीवालों को चुने हुए लोगों का करना है। इस तरह वह वोट अपना कर्तव्य दूसरों के लिए [illegible] है याने निष्क्रिय है। हम ऐसी निष्क्रियता नहीं चाहते। हमें जो सम्मतिदान देता है चाहे वह महीने में एक सूत गुण्डी दे या कुछ भी दे वह उसके साथ हमारे काम में हाथ बँटाने की प्रतिज्ञा करता है। समझने की यह एक खास वस्तु है।

कर्तव्य-निर्देश

हम सारे भारत में नहीं पैठ सकते, तो आपसे हम पूछना कि क्या किसी एक जिले में पैठ सकते हैं ? कम से कम एक जिला ऐसा बनाइये, जहाँ हर गाँव में अधिक से अधिक लोग आगे आयें और हरएक से आपको सम्मतिदान मिले। वहाँ आप अपना सेवक रखें और कुछ जिम्मेदारी लें और जनता की ताकत आप अपने हाथ में लें। ऐसा आप करें, तो दूसरे जिलों में भी आपका काम चलेगा।

दूसरी बात है शान्ति-सेना खड़ी करने की। किसी जगह अशान्ति या दंगा होता है तो हम कुछ नहीं कर पाते। [illegible] लोग [illegible]।

इसलिए यदि आप करुणा का राज्य चाहते हैं तो उस राज्य की जिम्मेवारी उठानी चाहिए।

खादी का रक्षण और हम

हम नेयनाथग्राम गये। वहाँ लोगों ने हम पर प्रहार किया। मेरे कान पर तो एक ही चोट पड़ी, बाकी सब प्रहार दूसरों ने ले लिये। प्रहार लेनेवालों में रामदेव बाबू भी हैं। उन पर खूब मार पड़ी। रास्ते में आते समय उन्होंने अपना अनुभव सुनाया। वे बोले कि गांधीजी के जमाने में हम अहिंसा, अक्रोध की बात तो करते थे, लेकिन जब कभी मार पड़ती तो क्रोध आ जाता था। इस मर्तबा बिलकुल क्रोध नहीं आया। अगर यह कहा जाय कि रामदेव बाबू एक खादी का मनुष्य है और ऐसे मौके पर उसका कर्तव्य है ही नहीं, तो हम कहना चाहते हैं कि आप खादी का रक्षण नहीं कर सकेंगे। खादी भले ही अपना रक्षण कर ले जैसे कि आज कर रही है।

रामनाथपुरम् में ग्रामदान का क्षेत्र खुल गया। वहाँ से तीस या चालीस मील के फासले पर दंगे चले। दो जातियों के बीच में खूब द्वेष चला। ये लोग ग्रामदान के गाँव में हैं और उन्हीं लोगों ने ग्रामदान दिया है। इस हालत में आपका ग्रामदान टिकेगा नहीं, खतम हो जायगा। यह सारी जिम्मेवारी हमें उठानी है। रचनात्मक काम करनेवाले पहले शांति-सेना के सैनिक होने चाहिए, उसके बाद दूसरे कुछ। हम खादी में और रचनात्मक काम में लगे हैं। उसका मूल्य हमने जाना है तो उसकी रक्षा करने की जिम्मेवारी हम पर है। नहीं तो हम असमर्थ साबित होंगे। पहले हम सेवा-सेना बनायें और सारे भारत में ऐसी योजना करें कि पाँच हजार के लिए एक सेवक हो और हिम्मत से काम करें। हिम्मत की शर्त बड़ी कठिन है। उसके बिना गांधी विचार चलेगा नहीं। मार पड़े तो भी प्रेम का अनुभव आना चाहिए।

जगह-जगह मारामारी होनेवाली है। कहीं-कहीं चलता है। उनके बीच से हमें गुजरना है। जहाँ दोनों बाजू का सत्य-असत्य की बात चलती है और मारामारी है और हम बीच में आते हैं तो मार मिलती ही है।

उस समय गुस्सा नहीं आना चाहिए। जिस विचार ने हमें पाला-पोसा उस विचार के लिए अब शरीर झोंकने का मौका परमेश्वर ने दिया है। ऐसा जिसे भान हो उस मनुष्य को हम शांति-सैनिक कहते हैं सिर्फ हिम्मत वालों को नहीं। हम मारेंगे नहीं, मार खाने को तैयार रहेंगे, यह तो एक निगेटिव (निषेधात्मक) बात हो जायगी। अब ऐसा नहीं चलेगा। पुराने जमाने में चलता था। सर्वोदय विचार की सिद्धि के लिए इस विचार से नहीं चलेगा कि हम केवल प्रेम की बात करेंगे और मन में सिर्फ प्रेम रखेंगे। सहन करने की भी बात नहीं है। यह सहज है, ऐसा जिसको लगेगा वह शांति-सैनिक बनेगा। सेवा-सैनिकों में से कुछ लोग ऐसे परिपक्व हो जायेंगे।

इसलिए हम सेवा-सेना बनायें और अपनी संस्थाओं के जरिये ऐसी मानसिक खुराक, सारा तत्त्वज्ञान, प्रेम आदि उन्हें मिले। हमारी सारी संस्थाएँ ऐसी बननी चाहिए, जो प्रेम की दीक्षा दें। वहाँ पर कुछ लोग बैठे तालीम दें। हमारी तालीम में व्यापक दृष्टि होनी चाहिए। अब अपना बचपन सिर पर सोचे कि एक उत्तम गोशाला बनायेगा तो मैं समझता हूँ कि गो-रक्षा के लिए वह बिलकुल असमर्थ साबित होगा। गोरक्षा क्या करते हैं, एक बम पड़ेगा, तो वह खतम हो जायगा। कौन बचेगा? बहुत अच्छी तरह से पाली-पोसी अपनी सारी गायें तुरत खतम हो जायेंगी। हमारे विचार पर जो मुख्य प्रहार है, वह यह है कि हिंसा की शक्ति इतनी बढ़ गयी है कि उसे कैसे रोका जाय? आज अगर गोशाला करते हैं तो भी तत्त्वज्ञान की गोशाला होनी चाहिए। वहाँ सर्वोदय विचार का चिंतन और मनन चलावें। उसमें आर्थिक सामाजिक और आध्यात्मिक पहलू का अध्ययन हो। उसके साथ-साथ गोरक्षण चले, तो यह एक पावन स्थल बनता है। इस पावन के आधार पर हम जीवन का सारा अध्ययन करें, तो मनुष्य प्रेरित होकर इस काम के लिए बाहर निकलेंगे। ऐसा जब हम करें, तब तो गांधीजी को हमसे जो आशा थी वह पूरी हो सकेगी।

चामोदे
८।११।५०

—रचनात्मक कार्यकर्ताओं से

कर्नाटक में अब अच्छा उधा 'जय जगत्' बोल रहा है। इस नाम का अमर कोन जय है तो वह बड़ी भारी चीज है। छोटा राम नाम जपता है और भक्त भी राम नाम जपता है। लेकिन दोनों के जपने में फरक है। जब भक्त राम नाम जपता है, तो तोता उसके पीछे हो जाता है। भले ही तोते को जंगल में राम नाम जपते नहीं सुना। इसलिए यहाँ पर कहा जा सकता है कि इसने बड़े समाज में कोई भक्त बकर है, जो जय जगत् का अर्थ समझता है।

सद्विचार का प्रवाह

संयुक्त कर्नाटक एक सिद्धान्त विचार भी हो सकता है और संकुचित विचार भी। संयुक्त कर्नाटक का मतलब है कि इस एक भाषा के लोग इकट्ठे हुए हैं और फिर भी देश के लिए काम करते हैं। इस विचार से भारत में शक्ति आयेगी। कुछ लोग संकुचित विचारवाले होते हैं और इसमें शामिल हो जाते हैं। उनका इस प्रकार शामिल होना भी बुरा की बात नहीं है क्योंकि वह सद्विचार है। सद्विचारों के प्रवाह में संकुचित विचारवाले शामिल होते हैं, तो धीरे धीरे उनके विचार भी उदार बन जाते हैं। संयुक्त कर्नाटक प्रथम कदम है उसके बाद संयुक्त भारत और उसके बाद संयुक्त विश्व बनाना है।

कोलम्बस अमेरिका की खोज के लिए निकला। उसे हिन्दुस्तान मिल गया। वह पृथ्वी की परिक्रमा पूरी नहीं कर सका। उसके ४५ वर्षों बाद अब अमेरिका और हिन्दुस्तान की खोज से लेकर चन्द्र तक की बात हो रही है। मनुष्य ने एक छोटा सा चन्द्र बनाया है। वह पृथ्वी से ८ ९ मील ऊपर घूम रहा है। इस तरह दुनिया ने प्रगति करके पृथ्वी की खोज और फिर परलोक की खोज तक पहुँच गये हैं वैसे ही ? हमने पहले 'जय हिन्द' का नारा निकाला था। अब वह 'जय जगत्' तक पहुँच गया है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दुनिया में वेग

से विचार आगे बढ़ रहे हैं। धीरे धीरे सभी भेदों की सरहदें टूटनेवाली हैं। अब विश्व को सम्मिलित परिवार बनाने की भावनाएँ बढ़ रही हैं। विशाल भावना बनती है, तो अपने जीवन पर भी उसका परिणाम होता है।

जीवन की प्रगति अपेक्षित

यह सारी प्रगति विज्ञान की शक्ति से हो रही है। उसी शक्ति से हम भूदान से ग्रामदान तक पहुँचे हैं। यह शक्ति सारी दुनिया में काम कर रही है। पहले अखिल भारतीय सम्मेलन अखिल भारत समाज सुधार परिषद् या भा. कांग्रेस कमेटी होती थी। आज क्या होता है? अखिल विश्व परिषद् दुनियाभर के रेड कासवालों की परिषद्, दुनियाभर के साहित्यिकों की, धर्म-पंथों की परिषद् होती है। इस प्रगति के साथ साथ जीवन की भी प्रगति होनी चाहिए। वह हो रही है। इसीलिए जब बच्चों को जय जगत् का नारा लगाते सुनते हैं तो हमारा दिल बहुत खुश होता है।

तीन शर्तें

आप सब मिलकर भूदान ग्रामदान के काम में लगाते हैं, तो 'जय जगत्' का मंत्र मजबूत होता है। ग्रामदान के बाद वकीलों का पुलिसवालों का कोई काम नहीं रहेगा। वे हमारे पास भूमिहीन के नाते जमीन माँगने आयेंगे। हम उन्हें जमीन देंगे और उनके सामने तीन शर्तें रखेंगे

(१) आपको काम करने की आदत नहीं है, तो गाँव के बच्चों को तालीम दें।

(२) अपने बच्चों को गाँव के दूसरे बच्चों के साथ खेती के काम में लगाइये।

(३) आपके कपड़ों पर मिट्टी का रंग लगना चाहिए। मिट्टी लगने से कपड़े मैले नहीं होते। मैले तो तब होते हैं जब पसीना लगता है या स्याही के दाग लगते हैं। आजकल विद्यार्थी के हाथ से कपड़ों को स्याही लगती है या नहीं? कलम से लिखते लिखते उसको जाकेट पर झाड़ ही देते हैं। मिट्टी का रंग गंदा नहीं होता वह पवित्र है। शास्त्र में कहा है भूतात्मा

बाह्यशुद्धि' — बाह्य शुद्धि पानी और मिट्टी से होती है और 'सत्यसंयमाभ्याम् अंतःशुद्धि' — सत्य व संयम से अंतर की शुद्धि होती है। इसलिए शरीर को मिट्टी लगे या कपड़ों पर मिट्टी का रंग लगे, तो अच्छा ही है। ऐसा होने से नौकर मन की शुद्धि हो जायगी और तन अच्छा रहेगा, तथा सर्वोत्तम होगा। समाज परस्पर हो जायगा तब 'जय जगत्' होगा।

पवनार
१२-११-५०

बाल-दिवस का संकल्प : १७

आज हमारे देश के प्रिय नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन है। उनके ६१ साल समाप्त हो रहे हैं। महात्मा गांधी के विचार को उनके पीछे चलानेवाले वे हमारे नेता हैं। देश की सेवा करने के लिए गांधीजी की इच्छा १२५ वर्ष जीने की थी, पर परमेश्वर ने उन्हें जल्द ही अपने पास बुला लिया। अब उनकी इच्छा नेहरू में प्रकट होनी चाहिए। इस देश की सेवा के लिए नेहरूजी को १२५ वर्ष का दीर्घ जीवन मिले, ऐसी हम उनको कामना करनी चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारे देश पर ऐसी कृपा करें।

नेहरूजी की वृत्ति

नेहरूजी के जन्म दिन को बच्चों का उत्सव दिन माना जाता है। यह इस प्रकार से योग्य ही है। नेहरूजी उम्र में बड़े हो गये हैं, लेकिन वृत्ति से अभी बच्चे ही हैं। उनकी बालकवत् सरल वृत्ति अभी तक कायम है। राजनीति का भार सिर पर रखनेवाले शख्स के लिए ऐसी वृत्ति कायम रखना बहुत मुश्किल होता है। पण्डितजी को यह कठिन कार्य भी सध गया है। उनका मानसिक उत्साह और ताजगी बच्चे की तरह है। ऐसे मनुष्य का जन्म दिन बाल दिवस के रूप में मनाया जाना इस प्रकार से उचित है।

जय जगत् का मंत्र

बच्चों ने सुबह हमारा स्वागत किया तब पुकारा 'जय जगत्'। यदि दुनिया के सब बच्चे इकट्ठे हों, जायें और 'जय जगत्' पुकारने लगें, तो कोई भी बच्चा नहीं कहेगा कि मेरी कौम की जय हो या मेरे देश की जय हो। कौम और देश की जय बोलना तो बड़ों की अक्ल है। बच्चे परमेश्वर के समान होते हैं। ईसामसीह ने कहा था कि उनके मुँह से भगवान् बोलता है। बच्चों के मुँह से जो बात निकलती है, वह दुनिया में जरूर कायम होनेवाली है। यहाँ हमको बहुत प्यारे बच्चे देखने को मिलते हैं और जब वे 'जय जगत्' पुकारते हैं, तो उनका आनन्द और भी खिल जाता है। 'जय जगत्' का मन्त्र बहुत शुभ वचन मालूम होता है। हम लोगों को अब विश्व-परिवार बनाना होगा। उसका आरम्भ बच्चों के 'जय जगत्' से ही होगा।

निबाह की योजना हो

सबके बाल बच्चों को खाना पीना अच्छा मिले, तालीम अच्छी मिले ऐसा सब चाहते हैं लेकिन यह कैसे होगा? जगह जगह क्या हो रहा है? गाँव गाँव में झगड़े हो रहे हैं। बेकारी बढ़ रही है। जमीन के सिवा और कोई साधन नहीं रह गया है। जमीन की भी मालकियत बनी है। कोई बड़ा मालिक है तो कोई छोटा मालिक; कोई बेजमीन है, तो कोई केवल मजदूर है। ऐसी हालत में बाल-बच्चों को कहाँ से तालीम मिलेगी और कैसे उनका पालन पोषण होगा? शहर में कल-कारखाने बढ़ रहे हैं और बड़ी-बड़ी देहातों में भी एक दिन का उत्सव होता है। ऐसे एक दिन के उत्सव से कोई काम नहीं बनेगा। पूरे साल की योजना होनी चाहिए और वह योजना तब तक नहीं हो सकती जब तक जमीन की मालकियत नहीं मिटती।

कडूर (मैसूर राज्य)
१४-११-५७

क्रोध से द्वेष भयानक

प्रेम के सामने प्रेम प्रकट करना मानव का ही नहीं जानवर का भी स्वभाव है। लेकिन वास्तविक प्रेम की ताकत तो तब प्रकट होती है, जब हम अपने से द्वेष करनेवाले पर भी प्रेम करें। क्रोध भयानक चीज है, पर द्वेष उससे भी भयानक है। यह जरूरी नहीं कि द्वेष करनेवाला क्रोधी हो। वह बड़े दिमाग से, शान्ति से भी किसीके खिलाफ षड्यंत्र कर सकता है। यह भी सम्भव है कि क्रोध न आने से द्वेष अधिक परिणाम लाये। क्रोध तो एक में आता है और उसे मिटाना भी कठिन नहीं है। क्रोध एक लहर जैसा दीखता है। हम यदि शान्त हो जायँ तो वह हम पर हमला नहीं कर सकता। लेकिन द्वेष खतरनाक होता है। वह वंश परम्परा से भी हासिल हो सकता है।

गुणों के जरिये प्रवेश

कोई द्वेष करता है, तो भी प्रेम करें, तभी हम उसमें परिवर्तन ला सकते हैं। प्रेम का नाटक नहीं किया जा सकता। तो फिर क्या किया जाय? मैंने एक तरकीब सुझायी है कि द्वेष करनेवाले में भी जो गुण हों, उनका हम चिन्तन करें। ऐसा करने से सामनेवाले पर हमारा प्रेम प्रकट हो सकता है। जैसे बिना दरवाजे का घर नहीं होता वैसे ही बिना गुण का कोई आदमी नहीं हो सकता। गुण दरवाजे जैसे हैं और दोष दीवार जैसे। हम किसी घर में दीवार के जरिये प्रवेश करना चाहेंगे, तो टकरायेंगे। दुनिया में ऐसा कोई शख्स नहीं हो सकता जिसमें दोष ही दोष भरे हों। इन्सान गुण के आधार पर ही जीता है। इसलिए हमें श्रद्धा रखनी चाहिए कि हरएक में गुण पड़े हैं, चाहे वे प्रकाशित न हुए हों। जिसमें गुण अधिक हैं, उसमें गुणों का

पता दूर से ही चल जाता है। लेकिन जिसमें दोष अधिक हैं, उसके गुणों को पहचानने के लिए उसके नजदीक जाना पड़ेगा।

अब सवाल यह आता है कि एक बुनियादी श्रद्धा के तौर पर हम व्यक्ति मात्र पर प्रेम कर सकते हैं या नहीं? लड़का कितना भी गंदा हो तो भी माँ उसे प्रेम से उठाती और साफ करती है। ऐसे ही गुण दोषों का विश्लेषण किये बिना हम सब पर प्रेम करें तभी उनके नजदीक जा पायेंगे। जैसे कुम्हार मिट्टी में से कंकड़-पत्थर ही चुन लेता है वैसे ही किसीमें पचासों दोष पड़े हों, तो भी हमें उसके गुण ही चुन लेने चाहिए। इसी तरीके से हम किसीका हृदय-परिवर्तन कर पायेंगे। द्वेष को मिटाना है, तो गुण के जरिये ही मिटा सकते हैं। जो सब पर प्रेम करेगा वही सबके नजदीक जाने की हिम्मत करेगा। मानव को गुण का आकर्षण होता है और दोषों का विकर्षण।

प्रेम के लिए आधार क्यों चाहिए?

प्रेम करने के लिए किसी आधार की जरूरत क्यों होनी चाहिए? क्या सामनेवाले में गुण, सौन्दर्य, बुद्धिमत्ता आदि हों तभी हम उससे प्रेम कर सकेंगे? क्या प्रेम के लिए इतना काफी नहीं कि वह प्राण है, जीव है, मानव है? प्रेम करने के लिए हम किसी आकर्षण की माँग करते हैं, इसका मतलब है कि हम प्रेम को पहचानते ही नहीं। हमारा अपने गुरु पर किस आधार पर प्रेम है? पापी भी अपने ऊपर प्रेम करता है और महापुरुष भी। आखिर क्यों? हम अपने में कौन-सा गुण देखते हैं? अपने ऊपर प्रेम स्वयंभू चीज है। यह सहज चीज है। ज्ञान या श्रद्धा से इसकी पहचान होगी, तभी अकारण प्रेम हो सकेगा।

व्यापक आत्मदर्शन आवश्यक

ईसामसीह ने कहा था कि 'तुम अपने पर जैसा प्रेम करते हो, वैसा ही पड़ोसी पर भी करो।' जो अपने ऊपर प्रेम करने का आधार है, वही दूसरों पर भी प्रेम करने का है। व्यापक आत्म-दर्शन के अभाव का और

कुछ हो नहीं सकता। जहाँ कम बेसी प्रेम होता है वहाँ द्वेष का प्रवेश होता है। आत्मस्वरूप का भान हुए बगैर यह सम्भव नहीं कि सब पर समान प्रेम किया जाय।

अगर हम चाहते हैं कि अहिंसा की विजय हो तो सब पर समान प्रेम करने की तरकीब हमारे हाथ आनी चाहिए। आज अहिंसा के बिना दुनिया टिक नहीं सकती। इसलिए हमें सब पर प्यार करना सीखना होगा। जाति गुण दोषों की ओर देखने से कम बेशी प्रेम पैदा होगा और उसमें द्वेष भी आयेगा। इसलिए हमें समझना होगा कि प्रेम तो स्वयंभू है। उसके लिए बाह्य अधिकार की जरूरत नहीं है। उसके लिए आधार है आत्मा। यह बात ज्ञान से सिद्ध हो सकती है या श्रद्धा से। दोनों हों तो बहुत ही अच्छा पर दोनों न हों तो 'संशयात्मा विनश्यति' जैसी हालत होगी।

हरगाही (वैशाली बिहार)
१ १२ ५०

ईसामसीह का स्मरण १९

ईसामसीह का स्मरण आज दुनिया के कुछ देशों के लोग करते हैं। करीब ३३ साल का उसका जीवन और उसमें दो तीन साल की उसकी मिनिस्ट्री। मेरा ख्याल है कि उसका सारा घूमने का क्षेत्र अपने यहाँ के तीन चार जिले के बराबर रहा होगा। इतने छोटे से जीवन में और इतने छोटे से क्षेत्र में उसने काम किया। पर आज हम उसका नाम और उसके विचार सारी दुनिया में फैले हुए पाते हैं। इन्सान में ऐसी कोई चीज है, जिससे वह अपने शरीर से अपने समाज से और समय से ऊपर उठकर ऐसा काम कर लेता है जो कुल दुनिया के लिए, सब काल के लिए लागू होता है।

आत्मसाक्षात्कार और श्रद्धा

प्रकाश की गति सबसे तेज है, यह शास्त्र ने बता दिया है। प्रकाश एक सेकें

में समायस पेड़-पौधे में वापस मील जाता है। परन्तु मन की गति इतनी अद्भुत है कि उसके साथ प्रकाश की कोई तुलना नहीं होती। मन से भी बढ़कर एक चीज है उसे हम 'आत्मा' कहते हैं। जिस किसी मनुष्य को उसका साक्षात्कार होता है उसकी शक्ति मर्यादित नहीं रहती। आज जो ये सारे धर्म चल रहे हैं, उनको आप 'पंथ' कहते हैं। पंथ माने श्रद्धा। मनुष्य को दृष्टतीत करने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है। उस साक्षात्कार को वह (मनुष्य) मानता है क्योंकि जिसको आत्मसाक्षात्कार हुआ है, उसे मानना ही पड़ता है। उसका वह शब्दों से वर्णन नहीं कर सकता। उसके अनुभव में वह चीज आती है। फिर उसकी संगति से (केवल शब्दों से नहीं) रहने से चलने से वह चीज दूसरों को छूती है। जिन्हें अनुभव तो नहीं हुआ लेकिन वह चीज उनको छूती है, तो वे श्रद्धा रखते हैं। जिसको अनुभव हुआ उसके लिए श्रद्धा का सवाल नहीं है। मेरे पास यह घड़ी है मैं इसे देख रहा हूँ यह अनुभव की बात है। इसमें श्रद्धा का सवाल नहीं है। वैसे ही आत्मा का अनुभव जहाँ हुआ वहाँ श्रद्धा जरूरी नहीं होती लेकिन दूसरों को जिनको अनुभव नहीं हुआ श्रद्धा की जरूरत होती है। किसी एक के अनुभव का असर उन पर भी होता है, जिसे वे देख नहीं सकते। इन दिनों एटम बम और हाइड्रोजन बम के प्रयोग चलते हैं। उनका असर दुनिया के वातावरण पर होता है। कई लोग बीमार पड़ते हैं। वे जानते नहीं कि क्यों बीमार पड़े। परन्तु उन पर असर होता ही है। उस असर को देख नहीं सकते। वैसे ही किसी एक मनुष्य की आत्मा से हुआ असर कुल दुनिया पर कम बेसी प्रमाण में होता है। जो उसकी संगति में रहते हैं, विशेषतः मानसिक संगति में उन पर ज्यादा असर होता है। वे उसको श्रद्धा से ग्रहण करते हैं। इसलिए सब धर्मों को आमतौर से 'पंथ' कहते हैं। हमको लगता है कि यह बहुत ही योग्य शब्द है।

आत्मानुभव का प्रकाशन कठिन

आत्मा बहुत व्यापक है। उसके अनुभव भी अनेक प्रकार के होते हैं। एक को जो अनुभव आया ठीक वैसा ही अनुभव दूसरे को नहीं आता। समय

दावा गलत होगा। स्वयं गुरु कैसा दावा नहीं करता। इसलिए जितने भी भक्तिवान् लोग हैं फिर वे किसी भी गुरु के हों उन सबकी एक जमात बननी चाहिए।

मैं अपने हृदय की बात कहता हूँ कि मुझे इन महापुरुषों के शब्दों की कोई खास जरूरत नहीं मालूम होती। शब्द उनके हैं, अमल हमें करना है। मैं अनेक भाषा जानता हूँ। हरएक भाषा में कुछ न कुछ पढ़ा भी है। लेकिन मुझ पर उनके शब्दों का जो असर हुआ है, वह उन शब्दों से परे है, उन शब्दों से ऊपर है। महापुरुषों के स्मरणमात्र से मेरे हृदय की भक्ति जगती है। उसमें धर्म का, भाषा का, देश-परदेश का फरक नहीं आता। उन सब महापुरुषों की एक जमात है। इसलिए हमको सब भक्तजन लोगों की भी एक जमात बनानी चाहिए। शब्द अलग अलग हों या अव्यक्त भी हैं, परन्तु हृदय की एक जमात ही हो।

धार्मिक पुरुष मनुष्येतर ईश्वर की श्रेणी में

ईसामसीह के लिए व्यक्तिगत तौर पर मैं क्या कहूँ? उनका जब क्रूसीफिकेशन (सूली पर चढ़ाना) हुआ तो ग्लोरीफिकेशन हुआ (उनकी पूजा होने लगी) अथवा डीईफिकेशन (देवत्व) हुआ ऐसा कह सकते हैं। इसलिए वे अब मनुष्य नहीं रहे। हिन्दू धर्म में जैसे राम और कृष्ण हैं वैसे ही क्रिश्चियनिटी में ईसामसीह हैं। बुद्ध भगवान् और मुहम्मद पैगम्बर की भी ऐसी ही हालत है। यद्यपि मुहम्मद साहब ने बार-बार कहा था : "भाइयो मैं तो केवल एक मनुष्यमात्र हूँ" लेकिन जब वे मरे, तब उनके जो अनुयायी थे उनको विश्वास नहीं हुआ कि मुहम्मद साहब मर गये। वे उनको अमर समझते थे इसलिए आखिर अबूबकर—जो मुहम्मद साहब का साथी था और बाद में खलीफा बना था—को मस्जिद के ऊपर चढ़कर लोगों से कहना पड़ा कि सचमुच मुहम्मद साहब मर गये, तब लोगों ने माना। क्योंकि उनका विश्वास था कि अबूबकर अत्यन्त सत्यवादी है। वही हालत ईसामसीह की हुई। उनको जब क्रॉस पर चढ़ाया गया तब उन्होंने कहा था कि तीन-दिन के अन्दर मैं वापस आता हूँ। अर्थात् उनका मतलब था—'इन स्पिरिट' वापस आता हूँ। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ जो बहनें थीं उन्होंने देखा कि क्राइस्ट क्रॉस पर से नीचे

परिपूर्ण बनो। मनुष्य की परिपूर्णता तब बनती है, जब उसमें स्त्री के गुण भी शामिल होते हैं। उसमें पुरुष के गुण तो पहले से होते ही हैं। वैसे ही स्त्री की परिपूर्णता तब होगी जब उसमें पुरुष के गुण शामिल होंगे। इस पर से मुझे लगा कि जो पुरुष ब्रह्मचर्य के लिए कोशिश करना चाहते हैं उनको स्त्री-गुणों का भी विकास करना होगा। तब वे पूर्ण बनेंगे। जो स्त्रियाँ पूर्ण बनना चाहती हैं, उनको अपने में पुरुष गुणों का विकास करना पड़ेगा। ईसामसीह जैसा कोई पुरुष पूर्ण होने की कोशिश करता है, तो उसमें मॅटिक्नेस आदि गुण आते हैं। अगर मान लो वैसी स्त्री निकले तो वह उससे भी अधिक प्रखर होगी ऐसा मेरा मानना है। उसमें स्त्री के गुण तो होंगे ही परन्तु पुरुष के गुण पुरुषों से भी प्रखर निकलेंगे। इसलिए ब्रह्मचारी स्त्री प्रखर होगी और ब्रह्मचारी पुरुष सौम्य होगा, ऐसा विचार मन में बैठ गया है। वही विचार आज के दिन मैंने आपके सामने रख दिया ताकि हम पूर्णता की कोशिश कर सकें।

हिरेकेरूर (मैसूर राज्य)
२१ १२ ५०

कर्ज चुकाने का उपाय

: २० :

ऐसा कौन सा गाँव है, जिस पर कर्ज नहीं है? किसान काश्त करते हैं अनाज पैदा करते हैं और इस तरह देश की सेवा करते हैं। वे साहूकार से कर्ज लेते हैं। साहूकार समय पर मदद करता है। अगर वह कर्ज न दे तो खेती न हो पाये। किसान खेती में परिश्रम करता है और साहूकार पैसा देता है इस तरह दोनों देश सेवा करते हैं। लेकिन होता क्या है? साहूकार उस मदद पर धंधा करना चाहता है। उस धन के आधार पर जीवन जीना चाहता है। यह ठीक नहीं है। इसलिए हमारा यह विचार है कि ग्रामदान में साहूकार भी शामिल हो। गाँववाले साहूकार से पूछें कि तुम चाहते क्या हो? तुम्हारा जीवन चले यही न? हमें भी तुम्हारी मदद चाहिए। इसलिए तुम भी परिवार में आ जाओ। तुमने हमें मदद दी

कर्ज दिया, बदले में क्या माँगते हो ? कीमत बताओ। तब फिर यह हिसाब और व्याज क्या है ? हम और आप एक ही परिवार के हैं। हमारा श्रम, आपका पैसा और जमीन मालिकों की। हम सब एक हो गये। सबको खाना-पीना मिलेगा। इसलिए आज से हमें कर्जदार कहना बंद कर दो।

साहूकार की स्थिति !

बाप ने बेटे को पैसे की मदद दी तो क्या वह कर्ज कहा जायगा ? बाप ने प्रेम से दिया। बाप बूढ़ा हो जायगा तो बेटा उसकी प्रेम से सेवा करेगा। बाप बेटे से यह नहीं कहेगा कि तेरे पर मेरा कर्ज है, उसे थोड़ा थोड़ा करके चुका। लड़का कबूल करता है कि बाप का ऋण मेरे सिर पर है। बुढ़ापे में उसकी सेवा करने पर भी वह उसे नहीं चुका सकता। वह पिता के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता।

साहूकार आज पिता के जैसा है। उसकी हम सेवा करेंगे, पर उसका कर्ज कभी नहीं चुका सकेंगे। इसलिए सारे हिंदुस्तान के साहूकार एक होकर जाहिर कर दें कि हमारा कर्ज चुक गया। किसीको भी वापस देने की जरूरत नहीं। हमने आपको प्रेम किया है। आपको हमने कर्ज नहीं दिया, प्रेम दिया है। जैसे मालिक जमीन दे सकता है, मजदूर श्रम दे सकता है वैसे ही साहूकार पैसा भी दे सकता है।

कर्जदार घबरायें नहीं

लोग कभी-कभी हमसे पूछते हैं कि 'कर्ज का क्या करोगे?' हम कहते हैं, 'साहूकार हमारा पिता है। उसका कर्ज हम कर्ज नहीं चुका सकते। वह प्रेम करने से चुक जायगा।' इसलिए कर्जदारों के लिए घबराने की बात नहीं है। उन्हें साहूकारों पर प्रेम करना है। उनसे पूछना है कि "आप क्या चाहते हो ? कितना काम करना?" वे कहेंगे "हाँ, उसमें काम तो नहीं है, लेकिन हम आपके समान श्रम नहीं कर सकते।" आप कहें, 'बहुत अच्छी बात है। हमारे घर में बूढ़े लोग रहते हैं। वे कुछ न कुछ काम करते ही हैं। बच्चों को सँभालते

हैं, सिखाते हैं। इसी तरह आप भी कुछ काम करें। और आपके लड़के ? उन्हें काम करना सिखाना होगा। वे हमारे साथ काम करें। बिना श्रम के कैसे चलेगा ? आपने भी इतना पैसा कहाँ से कमाया ? आपके पहले के लोगों ने एक जमाने में श्रम किया था उसीका फल यह पैसा है। वही पैसा आज आप कर्ज में देते हैं। उसके बदले आप चाहते हैं कि बिना श्रम किये ही मरने तक खाना मिले। ठीक है हम मरने तक आपको श्रम नहीं करने देंगे, बैठाकर खिलायेंगे। आप चाहिये और कर्ज की बात छोड़ दीजिये।

साहूकारों का कर्ज प्रेम और सेवा से चुकेगा

आज सारे देश के सामने कर्ज का सवाल है। तो क्या उसके लिए ग्रामदान रुक रहेगा ? कर्ज के लिए ग्रामदान रुक नहीं सकता। ग्रामदान में कर्जदार को कर्ज चुकाना आसान होगा। आज क्या होता है ? कोर्ट-कचहरी चलती है, झगड़े होते हैं दुश्मनी बढ़ती है। यह सारा कर्ज चुकाने के लिए। लेकिन अब कुछ करना नहीं पड़ेगा। कर्ज का झगड़ा भी नहीं और कर्ज भी कायम नहीं।

पहले जमाने में राजा महाराजा थे। अब वे नहीं रहे। फिर भी देश ने उनका रक्षण किया या नहीं ? इसी तरह हम सबका रक्षण करेंगे। लेकिन कब तक ? जब तक उनके लड़के काम करने योग्य नहीं बन जायेंगे। वंश-परंपरागत ऋण चलता रहने से तो साहूकारों का आदर भी कैसे रहेगा ? ऋषि मुनियों ने हमें ज्ञान दिया है, माता पिता ने हमारी सेवा की है मालिकों ने हमारा रक्षण किया है, साहूकारों ने मौके पर हमें पैसा देकर मदद दी है इन सबका ऋण हम पर है। हम सब एक परिवार के हैं। इसलिए यह कर्ज का सवाल हमें बिलकुल नहीं सताता। वह कर्ज हमें मान्य है। उसे हम चुकाना चाहते हैं। पर पैसे से कर्ज चुकाने में सार नहीं। वह प्रेम और सेवा से ही चुकेगा। इसलिए हम प्रेम और सेवा करेंगे।

चिक्केनूर (मैसूर राज्य)
६ १ '५८

ले जाना चाहता हूँ। उन्हें 'ना' कहना दशरथ के लिए कठिन था। फिर भी उसने उनके सामने एक दलील रखी :

'ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।

—मेरा राम अभी सोलह साल का नहीं हुआ है। उस हालत में आपके साथ कैसे जा सकता है ! वसिष्ठ ने दशरथ को समझाया कि ऐसे लड़के को दुनियावी तालीम मिलेगी। पूरी कहानी सुनाने की आवश्यकता नहीं है। कहना इतना ही है कि शिक्षण की योजना ऐसी हो ताकि १६ साल का लड़का ज्ञान में स्वावलंबी हो सके। डिक्शनरी है, नये ग्राहक के पुस्तक हैं, शिक्षण शास्त्र के ग्रंथ हैं उन्हें वह अपनी-अपनी भाषा में पढ़ सके; अपने प्रयत्न से दूसरों की मदद के बिना सीख सके अपने प्रयोग कर सके और सृष्टि से ज्ञान हासिल कर सके। जैसे भूमि में पानी होता है वह खोदने से बाहर आता है वैसे ही समाज और सृष्टि में से खोद-खोदकर ज्ञान का पानी निकालना चाहिए। ऐसी ताकत लड़कों को १६ साल की आयु में आनी चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि १६ साल के बाद ज्ञान में पराधीनता नहीं होना चाहिए।

बाबा ६२ साल की उम्र में बाबा 'जर्मन' पढ़ रहा है। उसकी कौन मदद कर रहा है ! एक डिक्शनरी है और एक ग्रामर। एक जर्मन लड़की भूदान देखने यहाँ आयी थी। वह १ १५ दिन रही। उसने थोड़ा उच्चारण ठीक किया। परिणाम यह हुआ कि अब बाबा की मुट्ठी में जर्मन भाषा आ गयी और चन्द दिनों में देखते देखते जर्मन भाषा के उत्तम से उत्तम ग्रंथ बाबा पढ़ेगा। एक भाषा का ज्ञान अच्छी तरह से हो तो दूसरी भाषाएँ जल्द सीख सकते हैं क्योंकि यह ज्ञान प्राप्ति का ज्ञान है। विद्यार्थियों को क्या सिखाना है इस बारे में 'उपनिषद्' में कहा है 'वेदानां वेदः'—वेदों का वेद सिखाना है। वेद सिखाते हैं तो 'बाइबिल' नहीं; बाइबिल सिखाते हैं, तो 'कुरान' नहीं कुरान सिखाते हैं तो 'धम्मपद' नहीं धम्मपद सिखाते हैं, तो 'राजनीति' नहीं और राजनीति सिखाते हैं तो 'इतिहास' नहीं सिखाया ऐसा होता है। इसलिए

कहा है 'वेदाभ्यासेन' यानी वेद को जानने और उसका ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति मानी चाहिए।

शत-प्रतिशत ज्ञान

ज्ञान की कुंजी होती है, वह हाथ में आनी चाहिए। बी० ए० पास कर लिया। बाद में क्या करना है? एम० ए०। एम० ए० कर लिया तो शिक्षण समाप्त। कहते हैं, एम० ए० के आगे समर्थ होगा यानी क्या? परिपूर्ण ज्ञानी? नहीं। शिक्षक जानते हैं कि जो चीज हम विद्यार्थियों को देते हैं, वह परिपूर्ण याद रखने लायक नहीं है। इसीलिए वे ३३ प्रतिशत से विद्यार्थियों को पास कर देते हैं। कोई रसोई बनानेवाला कहे कि मैं ३३ रोटी अच्छी बना सकता हूँ और ६७ बना बिगाड़, तो आप उसे नौकरी में रखेंगे? ३३ प्रतिशत मार्क्स हासिल करनेवाला ६७ प्रतिशत फेल है। फिर भी उसे पास करना पड़ता है, क्योंकि परीक्षक मानते हैं कि हमने ऐसी चीज सिखायी है कि जो याद रखने लायक नहीं है।

ज्ञान शत प्रतिशत होना चाहिए। लड़कों को विश्वास होना चाहिए कि यही ज्ञान सही है। अगर कोई सोचता है शायद यह होगा, शायद न होगा, तो वह ज्ञानी नहीं है। [illegible] तो शिष्य के नाते समाज में प्रवेश करता है। पहले शिष्य गुरु के घर जाता था, विद्या हासिल करता था और उसके बाद समाज में आकर आरम्भ में बोलता था— 'सर्वा नमस्यन्तु प्रदिशश्चतस्रः'—चारों दिशाएँ मेरे सामने झुक रही हैं। ज्ञान सारी सृष्टि पर मेरा काबू है। मैं ब्रह्म हूँ। इस मिट्टी का जो रूप बनाना चाहूँगा, दूँगा, क्योंकि यह अचेतन है और मैं चेतन हूँ। ऐसी आत्मविश्वास के साथ गुरु के घर से आता था। आज तो शिक्षण के नाम पर किसी तरह "[illegible] [illegible] करते ([illegible] देते) हैं। इस शिक्षण में स्वयं ज्ञान हासिल करने की शक्ति रहे, यह उद्देश्य नहीं है।

शिक्षण का उद्देश्य

अभी बिहार प्रान्त में पूर्णिया में एक शिक्षण परिषद् हुई। उस परिषद् के लिए मैंने एक संदेश भेजा था। उसमें लिखा था कि "आज एक शिक्षण विभाग है

और दूसरा रक्षण विभाग। परंतु अहिंसक समाज में शिक्षा ही रक्षा है। शिक्षण की यह जिम्मेवारी होनी चाहिए कि पुलिस और सेना खतम करें। हम जब कभी शिक्षण की बात सोचते हैं, तो कहते हैं कि शिक्षण में तो खर्च ही खर्च होता है—बहुत खर्च है। गरीब देश में यह नहीं चल सकता। परंतु होना यह चाहिए कि गरीब देश का जितना खर्च होता है, उसका आधे से ज्यादा खर्च शिक्षण पर हो। गांधीजी के जमाने में देश के लोग स्वराज्य की माँग करते हुए कहते थे कि स्वराज्य जरूर चाहिए। स्वराज्य मिलते ही आज जितना सेना पर खर्च हो रहा है उसे हम आधा कर देंगे। आज क्यों ज्यादा खर्च होता है? क्योंकि अंग्रेजी सरकार है। उसे इस देश की प्रजा पर विश्वास नहीं है। वह अपने लिए फौज पर बहुत ज्यादा खर्च करती है। स्वराज्य मिल गया। अब सेना का खर्च कम करनेवाली प्रतिज्ञा कहाँ गयी? इसलिए शिक्षण का यह दावा होना चाहिए कि देश की रक्षा हम अहिंसा की शक्ति से कर सकते हैं। यह शक्ति जिस शिक्षा में नहीं वह शिक्षा रानी नहीं है, दासी है। वह हमेशा के लिए पराधीन ही रहेगी।

ज्ञानरूपी शस्त्र के सामने बाकी सब शस्त्र निकम्मे हैं। ज्ञान में अगर ऐसी शक्ति नहीं है, तो वह ज्ञान नहीं है। जिस ज्ञान के साथ अभय नहीं निकलता वह कैसा ज्ञान है? आज सब जगह भय है। अमेरिका में क्या शिक्षित कम हैं? परन्तु उनकी विद्या में निर्भयता नहीं है। पहाड़-विस्तार है, पर संकुचित बुद्धि है। इसलिए भारत में हमें अपने सामने तालीम का यह आदर्श रखना चाहिए कि शिक्षण का विभाग पुलिस और सेना को खतम करेगा। यह शिक्षण का सामाजिक और राष्ट्रीय उद्देश्य है।

ज्ञान और कर्म का भेद गलत

दुनिया में झगड़े पैदा क्यों हुए? क्योंकि ज्ञान को कर्म से अलग कर लिया गया कल्पनामात्र से। यह मानस शास्त्र की गलती है। समाज में ज्ञान और कर्म को अलग किया यह समाज शास्त्र की गलती है। आर्थिक क्षेत्र में दोनों

को अलग किया यह अपशास्त्र की गलती है। कर्म और ज्ञान अलग हो ही नहीं सकते। जो अलग करता है, वह विचार को समझता ही नहीं। कोई भी ज्ञान क्रिया के बिना नहीं होता। निष्क्रिय ज्ञान—कर्म के बिना होनेवाला ज्ञान ऐसा एक ही है। 'अहं ब्रह्मास्मि' यानी मैं ब्रह्म हूँ। हमें अपने स्वरूप का ज्ञान आत्मा का ज्ञान रमण महर्षि के पास जाकर सीखना होगा। एकमात्र आत्मतत्त्व का ज्ञान ऐसी वस्तु है, जो बिना क्रिया के समझ है। बाकी सारा ज्ञान क्रिया से जुड़ा है। ज्ञान क्रिया से भिन्न नहीं हो सकता। जो ज्ञान क्रिया से भिन्न हो वह ज्ञान नहीं है। क्रिया भी ज्ञान से भिन्न नहीं हो सकती। यह दृष्टि का विषय है, इसलिए अगर ज्ञान को कर्म से अलग समझेंगे, तो वह मानस शास्त्र की गलती होगी।

ज्ञान का मुख्य साधन कर्म

लोग पूछते हैं कि आपकी पद्धति के अनुसार जो तीन घंटे काम करेंगे, तो ज्ञान कैसे मिलेगा? मुझे लगता है कि लोग सिर्फ पढ़ते ही रहेंगे, तो उन्हें ज्ञान कैसे मिलेगा? आज का छात्र तीन घंटे में ६-७ पन्ने पढ़ता है, तो क्या पढ़ना सारा तीन घंटे में पढ़ गया? यह तो मौत को न्योता हुआ। यह ठीक नहीं है। पुस्तक ज्ञान का साक्षात् साधन है, लेकिन वास्तव में तो पुस्तक हमारे और सृष्टि के बीच का एक परदा है। शंकराचार्य ने लिखा है, पुस्तक क्या कहती है? पुस्तक कहती है, 'गुड़' है। गुड़ क्या कहता है? गुड़ है। गुड़ खाने से जो ज्ञान होता है, वह आत्मज्ञान है। इस तरह आत्म-ज्ञान की व्याख्या शंकराचार्य ने की। पुस्तक में 'गुड़' पद लिखा। वह मददगार हो सकती है परन्तु ज्ञान प्राप्ति का सीधा साधन नहीं। ज्ञान प्राप्ति का सीधा साधन है गुड़ मुँह में डालना। गुड़ कैसे बनाते हैं, गन्ने का रस कैसे निकाला जाता है और उससे कैसे बनता है—यह सारी गुड़ बनाने की प्रक्रिया जो करेगा उसे ज्ञान मिलेगा। हमने मधुमक्खी पालन के बारे में पुस्तक पढ़ी। पढ़ने में दो-चार दिन लगे। फिर मधुमक्खियों का समय शुरू किया तो

मक्खियाँ हासिल करने के लिए कितने ही दिन भटकना पड़ा। वे मिलीं तो उनका प्रेम प्राप्त करने के लिए दो-तीन महीने प्रयत्न करना पड़ा। पुस्तक में जो लिखा था वह याद अवश्य था। परंतु साथ-साथ ज्ञान के लिए कर्म ही मुख्य है।

अन्याय को दूर करें

कोई पुस्तक पढ़ना आरंभ करता है और कहता है कि पढ़ा नहीं जाता। क्यों? चश्मा नहीं है। तब कोई पूछे कि देखता कौन है, आँख या चश्मा? चश्मा तो देख नहीं सकता। देखती है आँख। इसलिए साधन आँख है और चश्मा मददगार। आँख 'करण' है और यह चश्मा 'उपकरण'। ये व्याकरण के शब्द हैं। बाकी करण है और मामूली उपकरण। पाणिनि ने बताया है 'साधकतमं करणम्' यानी सबसे श्रेष्ठ साधन करण है। ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ साधन नहीं है।

कर्म और ज्ञान को अलग कर देने का हमने सामाजिक अन्याय किया है। इससे कुछ लोगों के पास केवल ज्ञान प्राप्ति का काम रह गया है और कुछ लोगों के पास केवल परिश्रम का। परिश्रमरहित समाज के टुकड़े हो गये हैं, अनेक वर्ग बन गये हैं। इसलिए जहाँ ज्ञान को कर्म से अलग करते हैं, वहाँ बड़ा भारी सामाजिक अन्याय होता है।

ज्ञान और कर्म को अलग करके हमने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भी अन्याय किया है। शरीर-परिश्रम करनेवालों को बारह आने या एक रुपया मजदूरी देते हैं और मानसिक श्रम करनेवाले को २५) रुपया रोज मिलता है। इस तरह आर्थिक क्षेत्र में ज्ञान से कर्म की अलग कीमत होने से समाज में दो जातियाँ बनीं। ऊँच नीच का भाव बढ़ा और बहुत अन्याय हुआ है। इसलिए हमारे शिक्षण का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह इन अन्यायों को दूर करे।

कुदरत से संपर्क

हमारे जीवन का आदर्श क्या हो? कुदरत के साथ जितना ज्यादा संपर्क होगा जीवन उतना ही उत्तम होगा। कुदरत से जितने अलग रहेंगे, उतने ही हम कमनसीब साबित होंगे, यह बुनियादी सिद्धांत है। देहात में

नेताओं के सामने बोलते समय हमने एक बात रखी थी उसे संक्षेप में यहाँ दोहराना चाहता हूँ। सर्वोत्तम आश्रम में दो सिद्धान्त हैं : १. खेती (अन्न-उत्पादन) में कम-से-कम मनुष्य का भार दूसरे उद्योगों में ज्यादा रहे। २. खेती के साथ सबका संबंध हो।

एक भी व्यक्ति खेती से अलग होगा, तो उसका जीवन अपूर्ण रहेगा और उतनी मात्रा में जीवन का आनन्द घटेगा। इसके साथ ही भूमि पर लोग कम से कम रहने चाहिए—ये दोनों बातें विरोधी दिखती हैं। परन्तु ये दोनों सिद्धान्त मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक हैं। जो देश या जो समाज खेती से दूर जायगा, उसका धीरे-धीरे अपकर्ष होगा, ह्रास होगा।

शहरों के लिए 'बेसिक' की योजना

अब सवाल आता है कि बड़े-बड़े शहरों में नयी तालीम कैसे चलेगी ! यह आपको देखना है। शहरवाले लोगों का खेती के साथ कम-से-कम संबंध आता है। इसीलिए वे बनावटी पाठ रचते हैं। उनमें कागज के फूल और दीवार पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त के चित्र होते हैं। उन्हें साक्षात् देखने का मौका नहीं मिलता। पूरा कृत्रिम जीवन बन गया है ! एक जर्मन दार्शनिक से पूछा गया कि 'सबसे आनन्ददायी चीज कौन-सी है ?" उसने कहा : "स्टारी हेवन एण्ड सेन्स आफ ड्यूटी।" माने नक्षत्र-तारका और कर्तव्य भावना ये दो सर्वोत्तम आनन्ददायी चीजें हैं। शहरों में नक्षत्र-तारका कहाँ देखने को मिलती हैं? वहाँ तो आग ही आग जलती रहती है। बिजली ने अन्धकार को भी भगा दिया ! अन्धकार चिन्तन के लिए, शान्ति के लिए है, लेकिन उसको भी भगा दिया ! इससे ज्यादा 'मेकानिज्म' क्या हो सकता है ! आसमान के साथ निसर्ग के साथ संबंध लाने के लिए शहरों में 'बेसिक एजुकेशन' के साधन का स्वरूप अलग होगा।

शहरों में लोगों का जमाव क्या है ? जैसे गोबर में कुछ अनाज के दाने होते हैं, उन्हें खाने के लिए असंख्य कीड़े पैदा होते हैं, वैसे ही वैसे

के लिए सभ्य समाज शहरों में फैल गया है। रहने के लिए जगह नहीं मंजिल पर मंजिल बाँधते चले हैं, तो 'भूदेव' को कहना पड़ता है कि इस अणु युग में इस तरह ऊँचे ऊँचे मकान बाँधोगे तो खतरा रहेगा। इसलिए शहरों का कृत्रिम जीवन तोड़ना पड़ेगा। बुनियादी तालीमवाले इस बारे में सोचें। वेद में ईश्वर का वर्णन किया है। उसे 'पुरंदर' कहा है। माने वह शहरों को तोड़ता-फोड़ता है।

संस्कृत में एक शब्द है—सुख। सुख कौन नहीं चाहता? सब चाहते हैं, लेकिन संस्कृत में 'सुख' का अर्थ होता है, 'सु + ख' अत्यन्त सुखम आकाश। कुदरत के साथ रहोगे, तो सुख मिलेगा आनन्द मिलेगा। यहीं देखिये न, बड़े-बड़े शहरों में जहाँ आकाश कम होता है, वहाँ किराया कम होता है। जहाँ ज्यादा आकाश खुला मिलता है, वहाँ किराया ज्यादा होता है। इस तरह हवा और आकाश मिलने पर मकान का किराया बढ़ता बढ़ता है। इतना मूल्य हवा और आकाश का है। तो यह हमारा विचार आप लोग समझें और जितना शिक्षण कुदरत के साथ जोड़ सकते हैं, जोड़ने की कोशिश करें।

हंसमाली —पी पी आई सेमिनार का
५-८-११-२८ उद्घाटन भाषण

विश्व-शान्ति के लिए भारत और इंग्लैंड से आशा : २२ :

इस सभा में एक अंग्रेज बन्धु उपस्थित हैं। वे हमसे मिलने आये हैं। वे गांधीजी के साथी रहे हैं। भारत और दुनिया की शान्ति के लिए उनके मन में बहुत प्रेम है। उन्होंने हमसे एक सवाल पूछा है कि "विश्व शान्ति के लिए दुनिया में प्रेम बढ़ाने और सेना घटाने के लिए हिन्दुस्तान और इंग्लैंड क्या कर सकता है?"

शस्त्र-बल और सैन्य-बल कम करने का सुझाव

विश्व शान्ति के लिए किसी देश को यह हिम्मत करनी ही होगी कि वह

अपना सैन्य वगैरह हटाकर उसका काम कर दे। याने हथियार और सेना कम करे अपने देश को मुक्ति दे दे। दूसरे देश या सामनेवाले क्या करते हैं, इसकी परवाह न करे। इस काम के लिए आगे कदम कौन बढ़ायेगा? जिन दो देशों का उन्होंने नाम लिया है, उन्हींके प्रति हमारे मन में श्रद्धा है। हम समझते हैं कि वे ही दो देश हैं, जो ऐसी हिम्मत कर सकते हैं। संभव है कि अहिंसा के लिए स्वयं एकतरफा कदम उठाने का यह काम इन दो देशों से न बने और कोई तीसरा ही देश कर बैठे। ईश्वर की लीला अगाध है। इसलिए जिन देशों से हम अपेक्षा रखते हैं, वे यह न कर सकें और जिनसे अपेक्षा नहीं रखते, वही कर बैठें तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ईश्वर की योजना में क्या है यह हम नहीं जानते। पर बुद्धि से सोचते हैं, तो हम इंग्लैंड और हिंदुस्तान से आशा होती है। हिंदुस्तान अपने को सेना से मुक्त कर सकता है, ऐसी आशा हमें इसलिए होती है कि भारत की सभ्यता ही उस प्रकार की है। और इंग्लैंड से हमें यही आशा इसलिए होती है कि वहाँ एक अन्तर्गत सामर्थ्य है। यही उनके सवाल के जवाब में हमने थोड़े में कहा।

भारत की आजादी से इंग्लैंड की नैतिमत्ता बढ़ी

कुछ लोग कहते हैं कि इंग्लैंड तो इन दिनों प्रथम श्रेणी में नहीं रहा, द्वितीय श्रेणी में चला गया है। किंतु हमारा विचार अलग है। हम समझते हैं कि इंग्लैंड जितना शक्तिशाली देश अभी दूसरा नहीं है। केवल सैन्य बल या संपत्ति को ही शक्ति नहीं कहते। आज इंग्लैंड के पास सैन्य कम है, लेकिन उस मात्रा में संपत्ति न होने से दूसरी श्रेणी में वह माना जाता है। फिर भी इन दिनों उसने बहुत बड़ी शान की है और वह है, भारत से अपना कब्जा उठा लेना। इस कारण उसकी नैतिक शक्ति कम नहीं है। इंग्लैंड के लोगों की नैतिमत्ता का दर्शन हम तब भी हुआ, जब कि उसके द्वारा मिस्र पर हमला हुआ। इंग्लैंड में दो पक्ष काम कर रहे हैं। एक पुराना है, दूसरा नया। पुराने पक्ष की ओर से, जिसके हाथ में सत्ता है मिस्र पर हमला हुआ। तो सारे इंग्लैंड की जनता को क्षोभ हुआ।

उसने अपनी सरकार के खिलाफ बहुत ज़ोरदार आवाज़ उठायी। हम इस घटना को बहुत कीमत देते हैं। इंग्लैंड की मजदूरदलीय सरकार को हम बहुत महत्त्व नहीं देते। उसकी बात गयी बीती है। वह दुनिया में टिकनेवाली नहीं है। एक पुराना प्रवाह इंग्लैंड में बना आया है, वह दिन-ब-दिन सूख रहा है। हम समझते हैं कि भारत से कब्ज़ा छोड़ने के कारण इंग्लैंड की जनता की वृत्ति बहुत ही नीतिमान् और सामर्थ्यवान् हो गयी है। इंग्लैंड का और हिंदुस्तान का जब इतिहास लिखा जायगा तब हिंदुस्तान पर से इंग्लैंड ने कब्ज़ा छोड़ा यह बहुत बड़ी बात मानी जायगी। भारत में गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसक आन्दोलन चला, उसके बाद इंग्लैंड और हिंदुस्तान के बीच प्रेम ही बना है। इसका गौरव जितना भारत को है, उतना ही इंग्लैंड को भी है ऐसा हम समझते हैं। इंग्लैंड के लोगों का स्वभाव क्या है यह भलीभाँति मालूम है। जिस प्रकार युद्ध को सुव्यवस्थित बना सकते हैं, यह वे खूब जानते हैं। इसलिए वे सेना-मुक्ति की हिम्मत कर अपने देश को उबार सकते हैं। यही हमारी इंग्लैंड से आशा है।

विभिन्न भाषाओं का एक देश—भारत की पहली विशेषता

भारत दीखने में तो एक देश है। लेकिन वास्तव में यह एक देशों का समूह है। जैसा यूरोप एक महाद्वीप है, वैसा भारत भी एक महाद्वीप है। इसमें विविध समर्थ भाषाएँ हैं। चीन बहुत बड़ा देश है और प्राचीन भी है, पर हिंदुस्तान जैसी अनेक विकसित भाषाएँ वहाँ नहीं हैं। सिर्फ यूरोप में ऐसी विकसित भाषाएँ हैं। हिंदुस्तान की इन भाषाओं में हज़ार हज़ार, बारह बारह सौ वर्षों का साहित्य है। एक-दूसरे की भाषा एक दूसरा समझ नहीं पाता। आप देख रहे हैं कि मेरी भाषा का तर्जुमा आपके सामने करना पड़ता है। ऐसी ही भिन्न भिन्न विकसित भाषाएँ यूरोप में हैं। फिर भी क्या यूरोप एक देश है? वहाँ हर भाषा का अलग अलग राज्य है। छिन्न-भिन्न छोटे छोटे राज हैं। इंग्लैंड और भारत में क्या बहुत बड़ा अन्तर है! मैं आजकल जर्मन सीख रहा हूँ। फ्रेंच सीख चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि कोई भी फ्रांसीसी १५ दिनों में जर्मन

सीख सकता है और कोई भी जर्मन १५ दिनों में फ्रेंच। दोनों भाषाएँ इतनी नजदीक हैं। उनकी लिपि भी एक है। पर हिंदुस्तान में ऐसा नहीं है। यहाँ सभी भाषाओं की लिपियाँ भिन्न भिन्न हैं। ऐसा होते हुए भी हिंदुस्तान देश एक है। यूरोप में लिपि और भाषा बिल्कुल नजदीक होते हुए भी उनके देश अलग-अलग हैं। जर्मनी और फ्रांस के बीच कोई बड़ा पहाड़ भी खड़ा नहीं जो उनको अलग कर सके। जैसे कि यहाँ हिमालय के कारण तिब्बत और भारत अलग-अलग हो गये हैं। सिर्फ भाषाएँ अलग अलग होने से वे देश अपने को अलग अलग समझते हैं और आपस में लड़ते हैं। इस कारण दो महायुद्ध हो गये। उन्हें बड़ा दुःख है कि हमारे देशों के बीच कोई पहाड़ नहीं है। इसीलिए एक ने 'मैजिनो लाइन' बनायी तो दूसरे ने 'सीगफ्रीड लाइन'। पर भारत में इतनी विविध भाषाओं के देश एकत्र रहे हैं। यह दुनिया में इतिहास की अद्वितीय घटना है।

रक्त में अहिंसा का प्रवाह

इस देश के रक्त में अहिंसा है, इसीलिए यह हुआ है। राजनैतिक दृष्टि से देखा जाय, तो यूरोप से हिंदुस्तान आगे है। भारत की इस विशेषता से हम अन्दाज कर सकते हैं कि यह सैन्य बल को छोड़ दे। हिंदुस्तान जब कभी ऊँची से ऊँची ताकत रखता था तब यहाँ के किसी राजा ने हिंदुस्तान के बाहर कभी आक्रमण नहीं किया। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त या अशोक का जमाना लीजिये। वे बहुत पराक्रमी राजा थे लेकिन नजदीक के पड़ोसी देशों पर हमला करने की घटना कभी नहीं हुई। यह बहुत बड़ी बात है। चीन और जापान में बौद्ध धर्म फैला। क्या उसके साथ हिंदुस्तान ने तलवार या तराजू भेजी? केवल ज्ञान और प्रेम लेकर ही इस देश के लोग वहां गये। दुनिया में ऐसी दूसरी मिसाल नहीं है। यही बात बता रही है कि हिंदुस्तान का स्वभाव क्या है?

आजादी भी अहिंसा के द्वारा

हिंदुस्तान ने आजादी की लड़ाई किस तरह लड़ी? गांधीजी ने साफ जाहिर किया कि हम अंग्रेजों के मित्र हैं। जिन अंग्रेजों ने पंडित नेहरू को वर्षों जेल में

रहा उनके लिए उनके दिल में कोई द्वेष नहीं। पंडित नेहरू का तो एक नाम लिया। हमारे ऐसे कई भाई हैं, जिन्हें इंग्लैंड के प्रति प्रेम है। अंग्रेजी भाषा इस देश में से नहीं जानी चाहिए, ऐसी आवाज उठानेवाले लोग भी यहाँ हैं। यह ठीक है कि एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। उसके बिना प्रचार नहीं हो सकता। विचार सर्वत्र पहुँचने के लिए अपनी ही भाषा काम आयेगी इसलिए राष्ट्रभाषा का नाम लिया गया है। फिर भी हिंदुस्तान से अंग्रेजी भाषा जाने की जरूरत नहीं है, वह रहनी चाहिए, ऐसी विचारशील लोगों की राय है। ये सब अहिंसा के लक्षण हैं। इसीलिए भारत से हम यह आशा कर सकते हैं कि भारत सैन्य से मुक्त हो जाय। लेकिन वह अभी नहीं हो रहा है क्योंकि अपनी अहिंसा की शक्ति का उसे अन्दर से भान नहीं हुआ है और वह अपने को निर्बल महसूस कर रहा है।

आखिर यह दुरवस्था क्यों कैसे आयी? इसका कुछ उत्तरदायित्व इंग्लैंड पर है। हम अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर नहीं डाल सकते। फिर भी यह कहना पड़ता है कि इंग्लैंड ने सारे भारत को जबर्दस्ती शस्त्रहीन बनाया इसीलिए लोगों को शस्त्रों की महिमा बहुत ज्यादा महसूस हुई। जो चीज अपने पास नहीं होती उसके बारे में मन में वासना रह जाती है। अगर यह घटना न हुई होती हिंदुस्तान से बलात् शस्त्र त्याग न कराया जाता तो उसकी ताकत प्रकट हुई होती।

अभिशाप भी वरदान

दूसरी दृष्टि से देखें, तो इस जबर्दस्ती के निःशस्त्रीकरण से लाभ भी हुआ है। महात्मा गांधी की अहिंसा को मौका मिला और उन्होंने कहा कि बिना शस्त्र के हम लड़ सकते हैं। इससे लोगों में एक आशा पैदा हुई। कुछ थोड़ी श्रद्धा से भारत ने उनके पीछे चलने का प्रयत्न किया। गांधीजी बार बार कहते थे कि "मैं वीरों की अहिंसा चाहता हूँ दुर्बलों की नहीं।" परन्तु हिंदुस्तान में जो अहिंसा प्रकट हुई वह दुर्बलों की अहिंसा थी। उसीके परिणामस्वरूप जहाँ अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त हुआ वहीं गोलियाँ चलीं, हजारों का रक्तपात हुआ।

तब गांधीजी ने बड़े दुःख से कहा कि हमारे देश में अभी तक जो अहिंसा चली वह दुर्बलों की थी। अब तो भारत आजाद है। अब वह सोचकर अपना उपाय खुद चुन सकता है। उस पर किसीकी कोई जबरदस्ती नहीं चलेगी। इसलिए अपनी बुद्धि से और अपना पूरा इतिहास देखकर वह यह हिम्मत कर सकता है।

हमारी शस्त्र-वासना

मैंने भारत सरकार को ऐसी सलाह भी दी है। लेकिन भारत-सरकार कौन है? अगर भारत सरकार नेहरू होते तो सेना जरूर कम हो जाती। शस्त्र के बारे में जब बात आती है, तो पार्लियामेंट में विरोधी पार्टी आवाज उठाती है कि शस्त्रास्त्रों पर खर्च होना चाहिए। यह तो अमेरिका में भी चलता है। वहाँ सेना और शस्त्र क्या कम हैं? फिर भी आइक कहता है कि अपने देश के बचाव के लिए सैन्य पर और खर्च करना पड़ेगा। यह तो एक चाबुक चलाया है, सरकारों ने लोगों पर। लेकिन हिंदुस्तान के लोगों पर सरकार को चाबुक नहीं चलाना पड़ा। अभी तक यहाँ के लोगों में शस्त्र छोड़ने की हिम्मत नहीं आयी है। सब जानते हैं कि आज ऐटम और हाइड्रोजन बम जैसी ताकतें पैदा हुई हैं कि उनके सामने शस्त्र-अस्त्र निकम्मे हैं। इस पर भी भारत के लोग उनसे इसलिए मुक्त नहीं होते कि उनके हाथ से शस्त्र जबरदस्ती छीन लिये गये थे। वह शस्त्र-वासना उनमें बनी हुई है। बिना शस्त्रास्त्रों के बचाव कैसे होगा, ऐसी उनकी कल्पना है। ऐसी हालत में हम भारत-सरकार को सलाह दें कि सैन्य कम करो, तो हमारी कौन सुनेगा?

हमारा कर्तव्य : ग्रामदान और शांति-सेना

सरकार को केवल सलाह देनेभर से काम नहीं होगा। इसके लिए हमें देश में वातावरण तैयार करना पड़ेगा और यह दिखाना होगा कि सारे भारत में कम-से-कम आन्तरिक रक्षा के लिए सेना का उपयोग नहीं करना पड़ता। आज हिंदुस्तान में आन्तरिक समस्याएँ हैं। जातिभेद है, पक्षभेद हैं और झगड़े हैं। उन झगड़ों में कहीं भी अशांति नहीं होगी, यह हमें दिखाना होगा। इसके लिए शांति-सेना के सिवा और कोई विचार हमें नहीं सूझता। इधर शांति-सेना

और उधर ग्रामदान। ग्रामदान से हम परस्पर झगड़ों को बंद करते हैं और शांति-सेना से कहीं भी क्षोभ न हो और प्रेम से अपने झगड़े हल कर सकें ऐसी कोशिश करते हैं। इस तरह ग्रामदान और शांति सेना मिलकर यह पूरी भावना है और दोनों मिलकर एक ही हैं।

शांति सेना से ग्राम ग्राम अपने पाँवों पर खड़े होंगे। वे स्वयं सैनिक योजना भी करेंगे और रक्षा भी करेंगे। इस तरह सारे देश में शांति सेना होगी तो समझ लीजिये कि देश चंद लोगों पर निर्भर नहीं रहेगा। यह शांति सेना क्या है? यह भी बीच के जमाने के लिए है और लोगों के तरफ से ही बननेवाली है। उसे हम तनख्वाह कहाँ से देंगे। बड़े-बड़े खेतों के लोग ही उसके सैनिकों को सैनिक के नाते मान्य करेंगे और जब लोगों में पूरी तरह से शांति स्थापित हो जायगी तब शांति-सेना की कोई जरूरत नहीं रहेगी। शांति-सेना सैन्य-सेना का खातमा कर खुद खतम हो जायगा। जैसे कपूर को खतम करने के बाद अग्नि स्वयं खतम हो जाती है।

यह सेना स्थापित करने में हम समर्थ होंगे या नहीं यह भगवान् जाने। निर्बलों को ताकत मिलती है, ऐसा इतिहास कहता है। और हम निर्बल हैं इसलिए यह काम करते हैं। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि भगवन् हम अपनी शक्ति का भान नहीं है लेकिन तुम हमसे काम लेते रहना।

मालूर (मैसूर राज्य)
१७ १ ५८

भूदान-यज्ञ में सर्वोत्कृष्ट समर्पण : २३ :

अभी खबर आयी है कि बाबा राघवदासजी १८ तारीख को परमेश्वर के पास पहुँच गये। लगभग पौने तीन साल पहले उन्होंने पद यात्रा करने का निश्चय किया था उस समय उन्हें लगभग डेढ़ सौ संस्थाओं से त्याग-पत्र देना पड़ा। इसी पर से उनके काम की कल्पना की जा सकती है। पूर्वीय भाग में उत्तर प्रदेश का कोई ऐसा स्थान न रहा होगा जहाँ वे न पहुँचे हों। लेकिन जब उन्होंने

तय किया कि अब भूदान के काम के लिए घूमना है और सब वासनाएँ छोड़कर घूमना है तो उन्होंने सब संस्थाओं से सम्बन्ध त्याग कर घूमना शुरू किया। उनके मन में एक ही कामना थी कि जनता का भला हो।

सार्थक जीवन

बाबा राघवदास के साथ मेरा परिचय कोई बीस साल से है। भूदान के सिलसिले में उनमें जो परिवर्तन देखा उनका जैसा रूप और चित्त देखा वह तुलसीदासजी के शब्दों में 'सुर-सरि वारि' है, माने शुद्ध गंगा जल। रामायण उनका बहुत प्रिय ग्रन्थ था। गीता और रामायण के प्रचार में उन्होंने अपना समय दिया। आज उनके अन्तिम स्मरण के मौके पर हमने रामायण ही पढ़ी। पढ़ते समय इत्तफाक से ऐसा प्रसंग आ गया कि भगवान् रामचन्द्र कृतकार्य होकर निजधाम जाना चाहते हैं और सारी प्रजा को बुलाकर उपदेश देते हैं। रामायण का जो सिलसिला इतने दिनों से हमारे यहाँ चला उसमें स्वयं ही यह प्रसंग आया। भगवान् कहते हैं कि इस उपदेश में कोई गलती पाओ तो निर्भयतापूर्वक उसका परित्याग करो और इसमें अगर मेरी गलती हो तो मेरा भी परित्याग करो। कितने निर्भयतापूर्वक बात कही गयी है। साथ ही साथ नर जन्म की सार्थकता भी बतायी गयी है।

साधक-सिद्धस्वरूप

परमेश्वर के घर किस मनुष्य का क्या मूल्य है, यह तो हम पहचान नहीं सकते। परन्तु जितना हम देख सकते हैं, उस पर से कहने में कोई हिचक नहीं है कि बाबा राघवदासजी ने नर देह को सार्थक किया।

साधकों की प्रसिद्धि अन्तिम दिनों में जितनी होती है उतनी पहले कभी नहीं होती और सिद्ध पुरुषों की प्रभा जितनी बचपन में फैलती है, उतनी आगे नहीं फैलती। यही भेद है अवतारी पुरुष और साधक में। अवतारी पुरुष आते हैं तो जन्म से ही प्रभाव रखते हैं और उसके बाद उनकी प्रभा भानु के समान हो जाती है। इसीलिए श्रीकृष्ण का बालरूप पूजते हैं। ऐसे अवतारी पुरुषों को हम छोड़ दें तो बाकी जितने साधक पुरुष होते हैं, वे चढ़ते-चढ़ते मुकाम पर

पहुँचने की तैयारी करते हैं। इस प्रकार एक तो नीचे उतरे हुए होते हैं, जिन्हें हम अवतारी पुरुष कहते हैं, दूसरे वे जो पहुँचे हुए होते हैं, जिन्हें योगारूढ़ कहते हैं, जैसे तुकाराम। आखिरी चार-छह माह में जो उनकी अवस्था थी वह जिन्दगीभर नहीं देखी गयी जैसा कि उनके अभंगों से मालूम होता है। या जैसे महात्मा गांधी का उनके अन्तिम दिनों में था या जैसा जमनालालजी का हुआ। बाबा राघवदासजी का भी ऐसा ही हुआ।

उत्तर प्रदेश की यात्रा खत्म करके वे मुझसे मिलने आये थे और तब मध्य प्रदेश की यात्रा पर जाना तय हुआ था। वे गये। उस समय जो स्वरूप हमने उनका देखा यानी उनका चित्त देखा उसके लिए 'शुद्ध गंगा-जल' ही उपमा हो सकती है।

कामना हमारी, सफलता बाबाजी की

भूदान यज्ञ का यह भाग्य है कि उसमें ऐसे पवित्र जीवन का समर्पण हुआ है। इससे ज्यादा कुछ कहना है नहीं। हम मार्ग पर निकले तो ऐसी ही हमने मन में कामना की कि यात्रा करते करते परमेश्वर के पास पहुँच जायँ। कामना हमारी सफलता मिली बाबा राघवदासजी को।

चन्नगिरी (मैसूर राज्य)
१०-१ ’५८

बुद्ध और महावीर की कार्य-पद्धति : २४ :

हिन्दू धर्म ने दुनिया का जो विचार दिये उनमें एक विचार यह था कि अमुक उम्र में गृहत्याग कर निवृत्त में विरक्त आर परमार्थमय होने की एक अवधि रहनी चाहिए। मैं जितना सोचता हूँ, मुझे यह बहुत सही बात मालूम होती है।

समाधान मानव-जीवन का एक कर्तव्य

देह तो एक दिन जाती ही है, इसके साथ क्या जाता है और क्या नहीं

ध्यान इसका भी थोड़ा लेना-जोखा कर लेना चाहिए। स्थूल देह के साथ जो कुछ कल्पनाएँ हैं, वे सारी उसी देह के साथ खतम हो जाती हैं। मनुष्य को इस जीवन में जो सबसे बड़ी प्राप्ति हो सकती है वह है अंतःसमाधान। उससे बढ़कर कोई चीज प्राप्त नहीं हो सकती। यह सिर्फ प्राप्ति ही नहीं बल्कि एक कर्तव्य भी है। मानो जीवन में करने का काम ही यह है कि समाधान प्राप्त किया जाय। उसे शास्त्रों में समाधि कहते हैं। समाधि और समाधान दोनों में 'सम् + आ' और 'धा' हैं। चित्त समान रूप में रहे। उसका चिपकाव अपमान, सम्मान या आसक्ति किसी भी पदार्थ, शरीर, स्थूल विषय वासना और कल्पना के साथ न हो यह है समाधान का स्वरूप। यह समाधान व्यक्ति को अपने जीवन में प्राप्त करना चाहिए और उसीकी स्थापना सारे समाज में होनी चाहिए। आज समाज में सेवा के नाम पर जो कोलाहल मचा है, वह समाधान स्थापित करनेवाला नहीं है। उससे व्यक्ति और समाज के जीवन में असमाधान पैदा होनेवाला है।

बुद्ध की स्थूल आधार-स्वरूप प्रक्रिया

हमारे सामने जमीन का मसला है। एक विचार के प्रचार के लिए हमने इसका स्थूल आधार लिया है। ऐसा आधार लिये बिना भी हम विचार प्रचारित कर सकते थे परन्तु जब कोई स्थूल आलम्बन रहता है, तो विचार को समझाने, समझने और देखने में सुलभता होती है। भगवान् बुद्ध के जमाने में भी ऐसा ही हुआ। उस समय यज्ञ में भगवान् के नाम पर पशुओं को अर्पण किया जाता था। जिस किसीके भी मन में आता वह पशु का बलिदान करता, उसका समर्पण कर मांस खाता था। उसमें एक सामाजिक विचार भी था कि सबको खिलाकर खाना। उस जमाने में मनुष्य मांसाहारी था ही। बुद्ध भगवान ने उस विचार पर प्रहार किया। अहिंसा का विचार प्रचारित करने के लिए उन्होंने इस मसले को हाथ में लिया। वे जहाँ भी गये पशु हिंसा का निषेध किया और समाज में उसके विरुद्ध भावना पैदा की।

महावीर की निरालंबन प्रचार-पद्धति

महावीर स्वामी ने इससे भिन्न पद्धति का अवलंबन किया। वे उसी जमाने के महापुरुष थे बुद्ध भगवान् से थोड़े साल बड़े। दोनों का स्थान एक ही बिहार प्रदेश था। काशी से लेकर नेपाल की सीमा। लेकिन महावीर ने विचार प्रचार के लिए कोई आलंबन नहीं लिया। मेरा मानसिक झुकाव महावीर की पद्धति की तरफ ज्यादा है। परन्तु अभी मेरा जो काम चलता है, वह बुद्ध भगवान् के तरीके से चलता है। वैसे दोनों में विरोध नहीं है। महावीर का तरीका यह था कि वे लोगों से बात करते थे, तो कोई मध्यस्थ हाथ में है, और विचार फैलाना है, ऐसी उनकी दृष्टि नहीं थी। वे जहाँ पहुँचते व्यक्तियों के साथ बात करते तो सामनेवाले का विचार समझ लेते और उसके जीवन में समाधान हो ऐसी राह उसे दिखाते थे। हरएक के लिए अलग राह दिखाते थे। कोई उपनिषद् पर श्रद्धा रखनेवाला आदमी आता तो उसे उपनिषद् के आधार से समझाते, कोई दूसरे ग्रंथ पर श्रद्धा रखनेवाला आता तो उसे उसी ग्रन्थ के आधार पर समझाते थे। कोई किसी भी ग्रन्थ पर श्रद्धा न रखनेवाला होता तो उसे बिना ग्रन्थों के आधार के ही समझाते थे। इस तरह वे अहिंसा का मूलभूत विचार मध्यस्थ दृष्टि रखकर समझाते थे।

आलंबन और निरालंबन के गुण-दोष

कोई आलंबन लिया जाय या न लिया जाय यह अलग बात है। परंतु उस आलंबन का भय स्थूल हो जाय और जिस सूक्ष्म वस्तु के प्रचार के लिए वह हो वही गौण हो जाय—आकार ही प्रधान हो जाय आलंबन ही प्रधान हो जाय और जिस विचार के लिए वह लिया था वह विचार छिप जाय—तो खतरा पैदा हो सकता है। आलंबन न लेने से विचार निखर जाता है। उपासना व्यापक रूप में पहुँचती है परन्तु विचार साकार नहीं बनता। समझनेवालों का उससे विचार आरपार होता है परन्तु आम समाज को उससे कोई आधार नहीं रहता। इस तरह आलंबन लेने में एक खतरा है

और आलंबन न लेने में दूसरा खतरा है। आलंबन लेने में एक गुण है और आलंबन न लेने में दूसरा गुण है।

दोनों का समन्वित रूप

हमने जमीन के मसले का आलंबन अवश्य लिया किन्तु साम्ययोग का, करुणा का विचार समझाना ही हमारी मूल दृष्टि है। आलंबन लेने में हमने बुद्धि का परिपालन किया परन्तु मेरा मन सतत आलंबन से परे सोचता है और मेरी बार-बार इच्छा होती है कि अपने मूल स्वरूप में रहूँ। फिर भी मैं आलंबन नहीं छोड़ता। इस तरह मेरे तरीके में दो तरीकों का समन्वय हो रहा है।

ग्रामदान से तत्काल शक्ति-वृद्धि का अनुभव हो

आप सभी इस विचार के सेवक हैं। आपको इस तरह सोचना चाहिए कि ग्रामदान हुआ और गाँव में उसकी शक्ति नहीं बढ़ी तो ग्रामदान हुआ ही नहीं। जिस क्षण लोगों ने ग्रामदान का विचार मान्य किया उसी क्षण उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि हमारी शक्ति बढ़ी। अक्सर सवाल पूछा जाता है कि ग्रामदान के बाद फसल कितनी बढ़ी? फसल तो बढ़नी ही चाहिए। लेकिन वह न भी बढ़े तो कोई हर्ज नहीं। गाँव को बाहर से कोई मदद मिले या न मिले, लेकिन हमारी ताकत बढ़ी है, ऐसा गाँववालों को अन्दर से अनुभव होना चाहिए। ज्यों ही हमने अपना व्यक्तित्व समाज में अर्पण किया त्यों ही हमारी और उस समाज की भी ताकत बढ़ने का अनुभव आना चाहिए।

'क्रियोपरम वीर्यवत्तरम्'

हमने शांति-सेना की बात कही है। शांति-सैनिक ऐन मौके पर करुणा और वात्सल्य का रूप लेगा। वह ध्यान रखेगा तभी तो वह जीतेगा। हमें एक लाख शांति-सैनिक चाहिए। हर सैनिक वैसा होना चाहिए, जैसे कि नानक के शिष्य थे। नानक ने अपने शिष्यों—सिक्खों के बारे में कहा था कि "हर शिष्य सिख दस हजार सैनिकों के बराबर हो। एक शिष्य याने एक सेना। यही बात शांति-

सैनिक को लागू है। गीता-प्रवचन' में इसका जिक्र किया है कि जैसे जैसे मनुष्य की वृत्ति सूक्ष्म होती है, वैसे ही वैसे उसकी क्रियाएँ कम होती और कर्म-शक्ति बढ़ती है। उसमें एक मामूली सभा का शांति रखने की मिसाल दी है। किसी सभा में गड़बड़ हो रही है तो पुलिसवाले मार पीटकर वहाँ शान्ति ला सकते हैं। एक स्वयंसेवक चिल्लाकर वही कर सकते हैं एक मनुष्य के चंद शब्दों से ही वहाँ शांति हो सकती है, तो दूसरे किसीकी सिर्फ उपस्थिति से ही शांति हो सकती है। जिसकी केवल उपस्थिति से सभा में शांति हो जाय उसने कम बहुत बड़ा किया, पर क्रिया कम की। इसके विपरीत स्वयंसेवक चिल्लाते रहे, तो क्रिया खूब की पुलिस की क्रिया तो अत्यन्त स्थूल रही। पुलिस मारपीट से, स्वयंसेवक चिल्लाने से और नेता व्याख्यान से सभा को शांत करता है तो महापुरुष करुण कटाक्ष या उपस्थितिमात्र से ही शांति स्थापित कर देता है। कम शक्ति क्रिया म नहीं रहती। इसकी यह बड़ी सुन्दर मिसाल है। धर्म सूत्रों में हमने इस पर एक सूत्र बनाया है 'क्रियोपरमे वीर्यवत्तरम्'। क्रिया का जितना उपरम होगा क्रिया जितनी सूक्ष्म बनेगी उतना कर्म बहुत होगा। हिंसा-अहिंसा को भी यही लागू है। हिंसावाले स्थूल साधन बनाते हैं, बहुत बड़ी क्रिया करते हैं। अहिंसा स्थूल साधन नहीं बनाती। क्रिया के अभाव से अहिंसा में तीव्रता नहीं होती। उसमें सौम्य, सौम्यतम प्रक्रिया होती है। आज समाज में जिस प्रकार सेवा चल रही है, उससे यह सारा दर्शन बिल्कुल ही विरुद्ध है।

पार्टियों से मुक्त होने का आग्रह क्यों ?

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि पार्टियों से मुक्त होने का आपका आग्रह क्यों है ? सोचने की बात है कि पार्टियों के रवैये क्या हैं ? वे सारे क्रिया पर जोर देते हैं, आन्तरिक कर्म पर नहीं। वे मनुष्यों की गिनती करते हैं, वे वोट हासिल करने के लिए मनुष्यों को इकट्ठा करते हैं प्रचार करने के लिए कहते हैं। यह सारा अत्यन्त स्थूल कार्यक्रम है। जहाँ इतनी स्थूल वृत्ति होती है, वहाँ न मानव का समाधान हो सकता है और न समाज का। वे मानते भी ऐसा ही हैं कि कुछ न कुछ क्षोभ या क्षोभ खड़ा बना रहना चाहिए। उसके लिए वे नाना प्रकार

है। लड़का भी किस चीज़ का अभिमान क्यों करे? सारा गाँव उसकी चिंता करे। सारे गाँव की तरफ से उसकी तालीम का इन्तजाम हो। फिर वह लड़का पढ़ाई खतम होने पर गाँव की सेवा करेगा।

तीसरा सदस्य 'ज्ञान'

तीसरा सदस्य होगा ज्ञान। आज गाँव में ज्ञान नहीं है। जो भी थोड़ा-सा ज्ञान पाता है, वह गाँव छोड़कर भाग जाता है। सारा ज्ञान शहर की युनिवर्सिटियों में भरा है। दूकान में सारा माल पड़ा है, जो पैसा देगा, उसे मिलेगा। इसी तरह युनिवर्सिटियों में ज्ञान भरा है। जो वहाँ जाकर पैसा खर्च करेगा, उसे वह मिलेगा। पहले यह तरीका था कि सन्त, फकीर, भक्त गाँव-गाँव घूमते और लोगों के पास ज्ञान पहुँचाते तथा भजन सुनाते थे। आज वह योजना नहीं रही है। अभी भूदान ग्रामदान के काम में कुछ लोग निकल पड़े हैं। नहीं तो कौन घूमता था?

इस भूदान से जितना ज्ञान-प्रचार हुआ, उतना हिंदुस्तान में इस जमाने में कभी नहीं हुआ। पुराने जमाने में ज्ञान-प्रचार की योजना थी। लोग गाँव-गाँव घूमते थे। लेकिन अब तो युनिवर्सिटियाँ आयीं, सारा ज्ञान-प्रचार ठंडा पड़ गया। युनिवर्सिटियाँ तालाब होती हैं। उसमें एक बहुत बड़ा मकान होता है, जिसमें एक आलमारी होती है, उसके अन्दर किताबें होती हैं और वहाँ ताला लगा होता है। मानो सारा ज्ञान वहाँ स्थिर हो गया, तालाब बन गया। लेकिन ज्ञान-प्रचार तो जंगम करते हैं। भूदान ग्रामदान के प्रचारक जंगम हैं। यह चलती-फिरती युनिवर्सिटी है। इनके जरिये गाँव-गाँव और घर-घर ज्ञान पहुँचाया जायगा। लोग ज्ञानी हैं और ज्ञान ही ग्राम-पंचायत का एक सदस्य होगा।

चौथा सदस्य 'उद्योग'

पंचायत का चौथा सदस्य होगा उद्योग। आज गाँव में कोई उद्योग नहीं है। फिर खेती के आधार पर हिंदुस्तान के देहातों का कैसे चलेगा? गाँव में खेती के साथ-साथ धन्धे भी होने चाहिए। जिन्होंने ग्रामदान दिया, उन्हें फौरन प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम अपने गाँव में ग्रामोद्योग खड़े करेंगे। गाँव के लोग कपड़ा पहनते हैं, लेकिन सारा का सारा कपड़ा बाहर की मिलों से आता है। अगर

मिल का कपड़ा न आये, तो द्रौपदी का वस्त्रहरण हो जाय! कपड़ा हरएक को चाहिए, साल को भी नया कपड़ा पहनाया जाता है—कम से-कम १५ गज। हजार जनसंख्या के गाँव में १५ हजार रुपये का कपड़ा चाहिए, माने गाँव पर १५ हजार का कपड़ा टैक्स बैठ गया। इस हिसाब से खेत की लगान बहुत ही कम है। चालीस साल पहले जो लगान देनी पड़ती थी, वही आज भी देनी पड़ती है। एकड़ पर दो रुपये का टैक्स होगा। लेकिन पुराने दो रुपये माने आज के आठ आने। इस तरह वह नाममात्र का ही टैक्स है। इस हिसाब से कपड़े का टैक्स बहुत ज्यादा है। ग्रामदानी गाँववाले गाँव की दौलत बढ़ाने के लिए गाँव में उद्योग शुरू करें।

पाँचवाँ सदस्य 'स्वच्छता'

पाँचवाँ सदस्य होगा स्वच्छता। आज गाँवों में इतनी गन्दगी होती है कि परमात्मा में गाँव के आते ही नाक को मालूम हो जाता है। महाभारत में एक कहानी है कि युधिष्ठिर को पाँच मिनट के लिए नरक का दर्शन कराया गया। जब उसने पूछा कि मुझे नरक का दर्शन क्यों कराया गया, मेरा तो जीवन धार्मिक था? तो उसे याद दिलाया गया कि तुम एक दफा झूठ बोले थे। 'नरो वा कुंजरो वा' कहने के कारण उसे पाँच मिनट के लिए नरक का दर्शन कराया गया था। तो हम सोचते हैं कि जिन गाँववालों को चौबीसों घंटे नरक में रहना पड़ता है, उनका कितना पाप होगा? वह पुराने जन्म का पाप होगा या इसी जन्म का? मेरा ख्याल है कि वह इसी जन्म का होगा।

मानव-मलों का बन्दोबस्त स्वच्छ और निर्मल होनी चाहिए। इधर उधर मल मूत्र विसर्जन नहीं करना चाहिए। खेत में खुरपी लेकर जायें, गड्ढा बनायें, शौच करें और उसे मिट्टी से ढाँक दें। तो फिर गन्दगी नहीं होगी और न मक्खियाँ ही बैठेंगी। आज होता यह है कि मक्खियाँ शौच पर बैठती हैं और वे ही आपके खाने पर बैठती हैं। इससे बीमारियाँ फैलती हैं। उन बीमारियों में से गाँववालों को कौन छुड़ायेगा? क्या सरकारी डॉक्टर छुड़ायेंगे? नहीं, उनका सर्वोत्तम

मैला होगा स्वच्छता। पानी और घर की स्वच्छता, मल-मूत्र का ठीक विसर्जन तथा शरीर, मन और कपड़े की स्वच्छता होनी चाहिए।

इस तरह पंचों की पंचायत बनेगी, तो इससे गाँव को लाभ होगा या नहीं, यह आप सोचिये।

मलवली (मैसूर राज्य)
१०-१-५८

सबके हृदय से सब भेद खतम : २६

'माझिया जातीचे मज भेटो कोणी । आवडीची धणी फेडावया ।
जाणे ध्याता हरि भवतापशमनी । ऐसियांचे मनीं ध्यात माझें ॥

—जिनके अन्तःकरण में परमेश्वर की प्रीति है, वे मेरी जाति के हैं। उनसे मेरी मुलाकात कब होगी, ऐसी उत्कंठा तुकाराम की है।

सतत हरि-कीर्तन से ही भेद-नाश

एक भाई ने प्रश्न पूछा है कि ग्रामदान के गाँवों में जाति-भेद, धर्म-भेद वगैरह कम होता है, किन्तु वह पूर्णतया मिटता नहीं। अतः उसे मिटाने के लिए क्या करना होगा? इसके लिए किसी कार्यक्रम की जरूरत नहीं, सिर्फ सतत हरि-कीर्तन की जरूरत है। हरि-कीर्तन में प्रीति रखनेवालों की जगह-जगह तीव्र भावना होनी चाहिए। यह चीज मैं सर्वत्र कम देखता हूँ। संस्थाओं में, राजनैतिक पक्षों में और आश्रमों में भी हरि-कीर्तन के बजाय सर्वत्र मत्सर ही दीखता है। कोई अपने से आगे बढ़ा तो मन में सन्तोष के बजाय मत्सर हो जाता है। वैष्णवों में परमेश्वर के भक्तों में जो प्रेम होता है, उससे उनकी एक जाति होती है। कुरान में कहा है कि तुम सब एक उम्मत हो, याने जिन्हें ईश्वर पर प्यार है, उन सबकी एक जाति है। हम भक्ति की तलाश में घूमते हैं। जहाँ-जहाँ भक्ति का अंश दीख पड़ता है, वह हमारी जाति का है, ऐसा भावात्मक प्रयत्न होगा, तभी काम होगा। इतना स्थूल दृष्टि से जाति-भेद मिटाने की कोशिश

से कुछ नहीं होगा। जाति-भेद का विरोध करने से उसे बल ही मिलेगा। इसलिए उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। हमारे मन में एक ही भाव भरा रहना चाहिए कि सामनेवाला भी मनुष्य है और मनुष्य के नाते ही वह हमारी सेवा के लायक है। हम उसकी सेवा करें।

घर या संस्था का स्नेह अविकारी नहीं

जहाँ अहिंसा सत्य आदि की निष्ठा होती है, वहाँ परस्पर अनुराग नहीं भी होता है लेकिन जिनका ईश्वर के साथ अनुराग है, उनका सब पर प्रेम होता है, सब पर अनुराग होता है। वैसे स्थूल अनुराग तो घर में भी होता है। बहुत से लोग उसका आकर्षण बताते हैं लेकिन मुझे उसका कोई आकर्षण नहीं लगता। उसमें काम-वासना और आसक्ति भी होती है। भाइयों में शादी होने तक प्रेम रहता है, किन्तु शादी के बाद उनके बीच भी मत्सर, द्वेष आदि होता है। कुछ लोग हमसे पारिवारिक स्नेह की बात करते हैं। एक दिन किसीने कहा कि अहिंसा सत्य आदि सिद्धान्तों के बजाय हम स्नेह पर खड़े हों। मेरी समझ में नहीं आता कि स्नेह कौन सी चीज है? स्नेह के लिए पारिवारिक मिसाल दी जाती है। मैं भी एक परिवार में रहता था और वह एक आदर्श परिवार था। माता-पिता के लिए मेरे मन में बहुत आदर था फिर भी मैंने वह घर छोड़ा। मैं जिसे स्नेह कहता हूँ वह दूसरी चीज है। वह भक्तों को भक्तों के लिए होती है। उसकी दूसरी कोई मिसाल है ही नहीं। जिसे आजकल 'सार्वजनिक' काम कहते हैं उसके प्रति मुझे कभी रस नहीं था और न आज भी है, क्योंकि उसमें वे सारे भाव होते हैं, जो घर में होते हैं। घर का मुझे कभी आकर्षण नहीं था। वह काम प्रेरित वस्तु है। सार्वजनिक सेवा में भी परमेश्वर की सेवा की दृष्टि नहीं दीखती। वैसी दृष्टि हो तो सार्वजनिक सेवा परमेश्वर की सेवा हो सकती है। लेकिन आज तो यह होता है कि घर में जितने विकार होते हैं, वे कुल के कुल सार्वजनिक सेवा में होते हैं। संस्थाओं में भी द्वेष होता है, एक ही संस्था के एक ही पंथ के एक ही मति-मंडप के सदस्यों में भी द्वेष होता है। जहाँ विकारों का राज दीख पड़े वह एक ही वस्तु है चाहे वह घर हो या बाहर। सार्वजनिक संस्था

कोई भेद नहीं है ऐसी दृष्टि होनी चाहिए। शिवाजी के दो पुत्रों की आपस में नहीं बनी। रामदास के दो शिष्यों के दो मठ बने। नानक ने शिष्य को गद्दी पर बिठाया तो उसके पुत्र ने भिन्न होकर दूसरा ही पंथ निकाला जिसे 'उदासी' पंथ कहते हैं। वह राजगद्दी नहीं संन्यासी की गद्दी थी। फिर भी वहाँ यह झगड़ा शुरू हुआ कि उत्तराधिकारी कौन बने। मुहम्मद पैगम्बर के बाद भी शिष्य-परंपरा चलनी चाहिए या वंश-परंपरा इस पर लड़ाई हुई। उसके कारण दो पंथ हो गये—'अहले साहिबा' और 'सवर्री'। दो योगियों में से किसी एक को ज्यादा सम्मान मिलता है तो झगड़ा शुरू हो जाता है। यह सारा क्या है? मन का खेल है। इसलिए इन दिनों मैं बार बार कहता हूँ कि मन से ऊपर उठना चाहिए। मन और बुद्धि एक ही चीज के दो भाग हैं। मन और बुद्धि से अलग होकर शुद्ध आत्मा की भूमिका में आना चाहिए। याने मन और बुद्धि भगवान् को समर्पित करनी चाहिए।

२१ १ ५८ —कार्यकर्ताओं के बीच पद-यात्रा में

सतत कार्य करना ही निरहंकारिता २७ :

चार दिनों से इधर आसाम की हवा बह रही है। अब वह सारे हिंदुस्तान में बहनेवाली है। यह देश बहुत बड़ा चौड़ा है। यहाँ इधर की बात उधर तक पहुँचने में थोड़ा समय लगता है और वह अच्छा भी है। लेकिन एक बार जब यह हवा इधर से उधर पहुँच जायगी तो आप देखेंगे कि चार दिनों में ही यह काम खत्म हो जायगा।

प्रकाश का आगम !

रात बारह बजे कैसा दृश्य होता है? अन्धकार ही अन्धकार। साढ़े बारह बजे उसमें कोई फर्क पड़ता है? नहीं। अन्धकार ही है। एक बजे? तब भी अन्धकार ही है। होते होते पाँच बजे जरा भान होने लगता है कि शायद थोड़ा प्रकाश आ रहा है फिर भी वैसा ही रहता है। सवा पाँच हुए। प्रकाश बढ़ा

को प्रकाश मिलने लगता है, तब श्रद्धा होती है। यही बात भगवान् ने गीता में हमें समझायी है। हम कर्म करते रहें और उसका फल भगवान् पर छोड़ दें। कर्म करते रहेंगे, तो फल उसकी कृपा से होगा ही। हिंदुस्तान में हम यह विचार बहुत सुनते हैं। अब तो गीता प्रवचन भी जगह जगह फैल रहा है और लोग पढ़ते भी हैं। परंतु हम सतत कर्म करते रहें और फल हमको न मिले तो भी कोई हर्ज नहीं—इसकी तैयारी हमारी नहीं हुई।

अहंकार और निरहंकारिता का विवेक

एक भाई ने लिखा है कि तुम अहंकार लेकर गाँव गाँव घूम रहे हो, इससे कुछ भी होनेवाला नहीं है। एक जगह बैठकर ध्यान वगैरह करो तो तुम्हें मुक्ति मिलेगी। यह क्या बोझ सिर पर उठा लिया है—हिंदुस्तान में सर्वोदय बनाना है, नया समाज बनाना है, जमीन की मालकियत मिटानी है, पाँच करोड़ एकड़ जमीन प्राप्त करनी है। इतना जोर लगाने पर भी चालीस पचास लाख एकड़ जमीन मिली है। क्या इतने पर से भी ध्यान में नहीं आता कि इससे कुछ नहीं होगा? फिर किसलिए घूमते हो? क्यों अहंकार उठाते हो?

हिंदुस्तान के लोगों का यह ख्याल बन गया है कि 'हमसे कुछ नहीं होगा' ऐसा कहकर बैठ जायें तो यह निरहंकार का लक्षण है। वे यह समझते ही नहीं कि निरहंकार का लक्षण सतत काम करते रहना है। जो काम नहीं करता उसके पास अहंकार होता है। सूर्य सतत उगता है, क्या यह अहंकार है? नदी सतत बहती है—उसके पास कोई अहंकार नहीं है। जहाँ सतत कर्म होता है वहीं निरहंकार रह सकते हैं। निरहंकारिता का अधिकार भी उसीका है, जो निरंतर कार्य करे, पर सैकड़ों वर्ष गुलामी में बीतने के कारण ही लोग इस निराशावाद को निरहंकार समझते हैं। उन्होंने इस विचार को निवृत्ति का भी रूप दे दिया है। ऐसी निवृत्ति में श्रद्धा रखनेवाले लोग हिंदुस्तान में जगह-जगह मिलते हैं। उनके ध्यान में नहीं आता कि जिसे वे निवृत्ति समझते हैं वह निवृत्ति नहीं बल्कि वृत्ति है। निरहंकारिता के नाम से लोग कर्मशून्य, आलसी बन गये हैं!

ईश्वर की कृपा सुल्तानी नहीं

कर्म हमें सत्य करना चाहिए। उसका जो फल होगा, वह भगवत् कृपा से होगा। भगवान् की कृपा कोई कुम्भी सुल्तान की कृपा नहीं है, वह उसी पर होती है जिस पर उसका होना उचित है। सुल्तान की कृपा किस पर होगी इसका कोई नियम नहीं है। जिस पर आज उसकी कृपा हुई है, उसी पर कल अकृपा भी हो सकती है। ऐसी कोई ईश्वर की सुल्तानी नहीं है। उसके पास अपना विचार है। इसलिए वह सत्कर्म करनेवालों को ही उत्तम देता है।

ईश्वर दाता है। वह हमारे कर्म की तरफ देखकर फल देता है। अपने कर्म से हम वह हासिल करते हैं, ऐसा नहीं है। हमने बबूल का बीज बोया है, तो वही फल आया। पर वह ईश्वर की योजना से ही आया हमारे बोने से नहीं। बीज से फल आया पर हमने उस बीज में से फल निकालने के लिए क्या किया? सिर्फ उसे जमीन में डाला। ज्वार बोया ज्वार आयी। गेहूँ बोया गेहूँ आया। लेकिन हमने क्या किया? इस गेहूँ के बीज से इतने इतने गेहूँ आने चाहिए, क्या ऐसी कुछ योजना की?

निरहंकारिता का आशय

सुन्दर बिछौना बिछाया तकिया लगाया हाथ धो गये दीपक बुझा दिया आँखें बन्द कर लीं और लेट गये। निद्रा के लिए इतना नाटक कर लिया लेकिन नींद नहीं आयी। क्या हम निद्रा लेते हैं? नहीं। जैसे माता अपने बच्चे को थपथपाकर सुलाती है, वैसे ही वह हमें सुलाता है, तब हम सोते हैं।

खेती में हम क्या करते हैं? बीज बोया। फिर राह देखते हैं हमेशा। पर कौन उगाता है? आपरेशन डाक्टर करता है। लेकिन क्या वह उस बीमार को दुरुस्त करता है? काटता है और सीता है, फिर राह देखता है। मान लीजिये, रोगी दुरुस्त न हो मर जाय तो डाक्टर को कोई फाँसी नहीं चढ़ाते। असल डाक्टर करता ही कुछ नहीं। दुरुस्त तो ईश्वर करता है। हाँ चीरने और सीने में अगर गलती हो तो वह उस डाक्टर की गलती है। चीरने और सीने में गलती न होने पर तो डाक्टर का काम खतम। उसके बाद सुधारना न सुधारना ईश्वर

पर निर्भर है। किसान ने जून या जुलाई महीने में ज्वार का बीज बोया। खूब गर्मी पड़ी, जमीन खूब तपी। पानी का कोई सवाल ही नहीं रहा। तो वह कैसे उगेगा? यह गलती बोनेवाले की है। जिस समय बोना चाहिए, उस समय वह न बोये तो बीज का नाश ही होगा। लेकिन ठीक तरह से ठीक समय पर बोया और वह उग गया तो उसका श्रेय क्या इसे है? नहीं, वह श्रेय ईश्वर को है। इसीको निरहंकार कहते हैं। बीज बोया नहीं और कहें कि ईश्वर कृपा से उगना चाहिए। तो क्या वह उगेगा? वह एक निमित्तमात्र कृति आपसे चाहता है। उतना भी आप नहीं करते तो वह कुछ देनेवाला नहीं है। हम एक बीज बोते हैं, तो वह निन्यानवे बीज देता है। एक बीज हमारा और निन्यानवे उसके ऐसे कुल मिलाकर एक सौ बीज मिलते हैं। अगर हम शून्य बीज बोयेंगे, तो वह भी शून्य ही देगा।

यह निरहंकारिता का शास्त्र है। हमें उचित कार्य उचित ढंग से करते रहना चाहिए। फिर नियोजित समय पर उसका फल होता ही है।

भूदान-यात्रा के प्रत्यक्ष अनुभव

भूदान यात्रा में हमारी श्रद्धा दिन-ब-दिन बढ़ती रही है। हमने जितना काम किया उससे ज्यादा फल मिला है। अभी धारवाड़ जिले में प्रवेश किया। चार दिन रहे। इन दिनों में कुल पाँच सौ ग्रामदान मिल गये। वे कैसे मिले? हमसे तीन चार रोज पहले लोग वहाँ पहुँच गये। चार दिन हम रहे। तो यह आन्दोलन साढ़े छह साल का हुआ या आठ दिनों का? कहने के लिए तो यही कहा जायगा कि यह आन्दोलन साढ़े छह साल से चला है। लेकिन धारवाड़ जिले के मुण्डगोड़ ताल्लुके में यह ग्रामदान का काम कितने समय चला? कुल आठ दिन। अब इतने में इतना काम हुआ—इसका श्रेय क्या हमारा? ईश्वर चाहता है कि यह काम हो—इसलिए होता है। और हम थोड़ा सा करते हैं तो ज्यादा फल होता है।

बल्लीगड़ी (मैसूर राज्य)
२१ १ '५८

स्त्री और पुरुष में जो कुछ भेद है, वह बाहरी है, शरीर का भेद है, अन्दर चीज एक ही है। लेकिन हमारे समाज में यह कल्पना फैल गयी है कि स्त्रियाँ माने शृंगार। इससे अधिक गलत कल्पना नहीं हो सकती। स्त्रियाँ बच्चों का संगोपन करती हैं, इसलिए उन्हें घर में और व्यवहार में अधिक समय देना पड़ता है, यह ठीक है। स्त्री और पुरुष दोनों अखण्ड ब्रह्मचारी भी हो सकते हैं और भक्तिमान् सेवा परायण भी हो सकते हैं। परमार्थ में स्त्री पुरुष के अधिकार में कोई फर्क नहीं है। व्यवहार में स्त्री के हाथ में जो सत्ता है वह और किसीके हाथ में नहीं है। समाज का शील स्त्री ही बना सकती है। राज्यसत्ता हाथ में लेकर राज्य चलाना, नाना प्रकार की विद्या का प्रचार करना, उद्योग धन्धे फैलाना—ये सब काम अपना महत्त्व रखते हैं। लेकिन सबसे अधिक महत्त्व अगर किसी चीज का है, तो वह है शील बनाने का। शील अगर ठीक नहीं रहा तो राज्य सत्ता, व्यापार-व्यवहार और विद्या आदि सब कुछ होकर भी देश खतरे में रहेगा। उसे हम बचा नहीं सकेंगे। केवल विद्या, केवल व्यापार व्यवहार, केवल राज्यसत्ता काम में नहीं आती। उससे समाज उन्नत और शक्तिशाली नहीं होता, समाज टिक भी नहीं सकता।

नारी के हाथ में महान् शक्ति

यह शील बनाने की शक्ति स्त्री के हाथ में है। वे इसके जरिये जितना उत्तम काम कर सकती हैं, उतना और कोई नहीं कर सकता। इसलिए स्त्री शिक्षण में ऐसी योजना होनी चाहिए कि जिससे उन्हें भक्ति मार्ग की प्रेरणा मिले। भक्ति मार्ग जितना फैलेगा, उतना शील दृढ़ बनेगा, निष्ठा रहेगी। यह चीज अपने देश में घर-घर में चलती थी। भक्ति मार्ग के लिए घर घर में प्रीति थी। बहुत लोगों का अनुभव है कि उनका बचपन घर में अपनी माता से जो भक्तिमार्ग शिक्षण हुआ

वही उनकी सबसे बड़ी ताकत थी। हमने अनेक विद्याओं का अध्ययन किया अनेक भाषाओं का ज्ञान हमने हासिल किया तो भी उससे उतनी ताकत नहीं मिलती और न मिली जितनी हमारी माता के स्मरण से हमें मिलती है। वह किस तरह पूजा करती थी किस तरह भक्ति भाव से भजन गाती थी किस तरह भक्ति-भाव से उसकी आँखों से आँसू बहते थे किस तरह भगवान् के स्मरण में अपने को भूल जाती थी किस तरह पड़ोसी की सेवा का मौका मिलता तो उसे आनन्द होता था और वह कैसे दौड़कर जाती थी, इस सारे स्मरण से जो ताकत हमें मिलती है वह अनेक विद्याओं से भी नहीं मिलती।

घरों में भक्ति-परम्परा विशृंखलित

अभी जो शिक्षण दिया जा रहा है उसमें भक्ति मार्ग का अधिष्ठान नहीं है। इसलिए शील बनाने के लिए शक्ति भी हासिल नहीं हो रही है। याने स्कूल में यह चीज नहीं रही और घर में यह चीज कम हो गयी है, यह देश के लिए बड़ा खतरा है। शिक्षण बढ़ा है लड़कियाँ तालीम पाती हैं, लेकिन उनमें शील बनाने की ताकत नहीं आती। पहले स्त्रियाँ पढ़ी नहीं थीं तो भी वे बच्चों का शील बनाती थीं। पुरानी हर चीजें अच्छी होती हैं ऐसा नहीं है कुछ गलत भी होती हैं। वे गलत बातें हमें नहीं लेनी चाहिए, लेकिन जो पुरानी अच्छी बातें हैं, उन्हें मजबूती से पकड़ रखना चाहिए। हमारी आधुनिक लड़कियाँ भक्ति मार्ग और शील के रास्ते में बिना क्या उद्योग, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, संगीत चित्रकारी और तरह-तरह के काम सीखती हैं। लेकिन कुल मिलाकर भक्ति और शील के बारे में वे बिल्कुल बेकार बनती हैं।

स्त्रियाँ अपनी शक्ति का अनुभव करें

लड़कियाँ भी ग्रेजुएट हैं, इसलिए एम० ए० करना जानती हैं। तरह तरह के छोटे-बड़े व्यवसाय भी कर सकती हैं पर इससे कुछ नहीं होता। एक था सियार का बच्चा और एक थी बूढ़ी शेरनी। वह बच्चा बूढ़ी के सामने आया और करने लगा अपनी बड़ाई। बोला : मैंने अनेक कलाएँ हासिल कीं कालेज की पढ़ाई की अंग्रेजी भी कुछ जानता हूँ इत्यादि। उस बूढ़ी में उठने की ताकत नहीं

थी। फिर भी उसने कहा : बेटा तुम शूर हो, विद्वान् हो इसमें शक नहीं; लेकिन तुममें एक बात की कमी है। जिस कुल में तुम पैदा हुए हो उसमें हाथी का शिकार नहीं होता। यह तुम्हारा दोष नहीं है। तुम्हारे कुल में ही वह बात नहीं है। उसी तरह यह टाइपिंग, यह मशीनरी का काम, यह अंग्रेजी भाषा इन सबसे हाथी का शिकार नहीं होनेवाला है। उसके लिए तो दूसरी ही चीज चाहिए। माया मोह, विषयासक्ति से सब मुक्त करने होंगे। ये सारे पुरुष तरह-तरह की विद्या सीखकर भेद-भाव बढ़ा रहे हैं। स्त्रियां भी बढ़ाने वाली बन रही हैं। उनमें से समाज को बचाने की शक्ति इन विद्याओं और कलाओं में नहीं है। वह सब शक्ति शील में है, जिसका शिक्षण भक्ति मार्ग से मिलता है। इसलिए मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप जरा इस तरफ थोड़ा ध्यान दीजिये और अपनी शक्ति महसूस कीजिये। स्त्रियों की शक्ति बहुत बड़ी है। बचपन से बच्चा आप ही के हाथ में रहता है। आप उसे स्तन पान कराती हैं उसके साथ उसे परमेश्वर निष्ठा का दूध भी पिलायें तो देश का बहुत बड़ा काम होगा।

अशिक्षित स्त्रियाँ जो खेतों में कुछ काम करती हैं, वे उतनी गुलाम नहीं होतीं जितनी शिक्षित स्त्रियाँ होती हैं। क्योंकि शिक्षित स्त्रियाँ आरामतलब होती हैं। इसलिए पति देवता के हाथ में रहने के सिवा गति नहीं रहती। आज़ाद तो वह होगा, जो अपने मन और इन्द्रिय पर अंकुश रखना सीखेगा। पुरुष बीड़ी पीता है, तो स्त्री को भी बीड़ी पीनी चाहिए, क्या यह आज़ादी है? भारत में स्त्री की प्रतिष्ठा है। लोकमान्य तिलक ने कहा कि हिंदुस्तान में धर्म का शील का रक्षण स्त्री ने किया है। इसलिए हम कहते हैं कि वोटिंग का अधिकार मिले हो या दूसरी कितनी भी विद्याएँ हासिल हुई हों तो उससे काम नहीं चलेगा। आप तो शील रक्षण का ही काम कीजिये।

हुबली (मैसूर राज्य)
१५।१।५५

स्वराज्य प्राप्ति के पहले जो रचनात्मक कार्य हो सकते थे उनका स्वरूप अब वैसा का वैसा ही नहीं रह सकता, फिर चाहे वह हिंदी प्रचार का काम हो खादी का हो या ग्रामोद्योग का हो। यह ध्यान में नहीं आया और पुराना ही क्रम जारी रहा तो वे सारे कार्य वेगहीन, निःसत्त्व, वीर्य-हीन और पुराने हो जायेंगे। अगर आज कोई हमसे कहे कि अमुक जगह हरिजनों के लिए होस्टल खोला है, जहाँ हरिजन लड़कों को तालीम दी जाती है, तो यह चीज जीवनदायी नहीं होगी, क्षीण वीर्य हो जायगी। आज अगर कोई कहे कि हम खादी-उत्पादन के काम में लगे हैं मजदूरों को रोटी देते हैं, जो भूतदया का कार्य है, तो उसमें कोई सार नहीं है। क्योंकि ये सारी चीजें सरकार कर सकती है। आपकी सरकार के हाथ में कल्याण का पूरा जिम्मा आया है। हिंदी-प्रचार का, स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का काम आज सरकार करेगी। वही काम हम करते हैं, तो उससे पुष्टि होगी। यह कोई बुरा काम नहीं है, परन्तु वह क्षीण होगा उसमें वीर्य नहीं रहेगा। नव समाज के लिए नवीन उत्साह देनेवाली चीज ही चाहिए। यह अनुभव की बात है। वेदों में कहा है कि ज्ञानियों को 'अचिन्त्य ब्रह्म' का आकर्षण होता है, जिसका चिन्तन पहले कभी नहीं हुआ उसका आकर्षण होता है। जिसका चिन्तन पहले हुआ उसका आकर्षण नहीं होता। आज एक भाई ने हमसे पूछा कि इस तरह भूमिदान मिलने की बात इतिहास में कभी नहीं हुई, तो अब कैसे होगी? हमने जवाब दिया कि इतिहास में स्पुटनिक का कहीं जिक्र नहीं है। पर आज वह आपकी आँखों के सामने है। इसलिए इतिहास में जो नहीं हुआ वह करने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है। अगर सारे काम हमारे पूर्वजों ने कर लिये होते और हमारे लिए नया काम ही न रहता, तो भगवान् हमें जन्म क्यों देता? उसने हमें जन्म दिया, क्योंकि एक नये काम की जिम्मेदारी हम पर है। नये काम के लिए तरुणों को नयी स्फूर्ति मिलती है।

भारत में सर्वोदय प्रचार की जिम्मेवारी किसी पर है, तो हिंदी-प्रचारवालों पर है। सर्वोदय के प्रचार की जिम्मेवारी आपकी भी है और दूसरों की भी है। परन्तु उसके साधन आपके पास हैं। आप कहाँ भी जायेंगे हिंदी को सर्वोदय के प्रचार का साधन बनायेंगे। जैसे स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि तुम वेदान्त का प्रचार करना चाहते हो तो संस्कृत सीखो वैसे ही हम कहेंगे कि सर्वोदय का प्रचार करना चाहते हो तो हिंदी सीखो। संस्कृत को वेदांत तत्त्वज्ञान की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। आज दुनिया में जगह जगह संस्कृत का अध्ययन होता है वह आत्मज्ञान के बल से ही होता है। वैसे ही अगर हिंदी सर्वोदय विचार के प्रचार का साधन बनती है, तो संस्कृत के जैसी ही हिंदी की प्रतिष्ठा कायम होगी। इस तरह एक बड़ा उत्तम मुक्ति-कार्य करने के लिए आप उसके अग्रदूत बन सकते हैं। अन्यथा आप पुण्य-कार्य करते रहेंगे उससे आपको कुछ काम मिलेगा कुछ धन प्राप्ति होगी जीवन यात्रा ठीक से चलेगी परन्तु हिंदी की प्रतिष्ठा कायम नहीं होगी। आज हिंदी के लिए बड़ा कठिन दिन आये हैं। मुझे इतना बड़ा भी डर नहीं है। हिंदी अगर सर्वोदय विचार का वाहन बनती है, तो हिंदी के लिए कोई कठिनाई नहीं है। जैसे आज लोग अध्यात्म के लिए संस्कृत सीखते हैं, वैसे सर्वोदय विचार समझने के लिए हिंदी सीखेंगे।

तुमकुर (मैसूर राज्य)
२८-१-५८

भारत के व्यापारी भय का त्याग करें : ३०

सर्वोदय विचार दो कार्य करेगा स्नेहन-कार्य और निरसन कार्य।

स्नेहन-कार्य

आज समाज में वर्गभेद के अनेक स्थान हैं। चुनाव होते हैं उसके आधार पर लोकशाही सत्ता चलती है। भिन्न भिन्न पक्षों में और एक पक्ष में भी अलग

अलग 'गुट' होते हैं, जिसके कारण घर्षण होता है। याने राजनीति घर्षण का स्थान बन जाती है। समाज में जाति भेद, पंथ भेद जैसे अनेक भेद हैं। आर्थिक भेद तो हैं ही। सर्वोदय को एक काम यह करना है कि आज की समाज रचना को बदलना है और जहाँ जहाँ घर्षण होता है वहाँ वहाँ तेल डालना है। यह सर्वोदय का सौम्य कार्य है, स्नेहन कार्य है, मधुर कार्य है।

निरसन-कार्य

आज की समाज रचना अन्तर्गत परस्पर स्वार्थों के विरोध का निरसन करना है, वर्ग भेद का निरसन करना है। यह कठिन कार्य है, परन्तु यही मुख्य कार्य है। केवल निरसन से काम नहीं बनता। निरसन 'निगेटिव' हो जाता है। 'पाजिटिव' कुछ चाहिए, इसलिए नव समाज रचना करनी है। स्नेहन निरसन और उसके लिए नव समाज रचना ऐसा त्रिविध कार्य हो गया। निरसन-कार्य स्वाभाविक ही कठिन होता है। हम चाहते हैं कि आज के पक्ष प्रेमपूर्वक आत्मसात् कर लें। अपना नाश प्रेमपूर्वक कर लें और यह समझ जायें कि उसीमें अपना भला है। पक्षातीत राजनीति को अपनायें। अगर स्नेहन कार्य जारी रहा तो निरसन में कटुता नहीं आयेगी।

कार्ल मार्क्स ने विरोध और संघर्ष को सामाजिक विकास का मुख्य तत्त्व माना है। उनकी यह मान्यता पश्चिमी है। यह भारत के समाज को लागू नहीं होती। भारत का समाज बहुरंगी, बहुविधी, मिश्र और अन्तर्राष्ट्रीय है। यह एक राष्ट्र तो है, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र है। इसलिए कार्ल मार्क्स का जो सिद्धान्त है कि विरोध के जरिये संघर्ष के जरिये विकास होगा, वह भारत में लागू नहीं होता।

माँ प्रेम से बच्चे की भलाई के लिए सत्याग्रह, उपवास आदि सब कुछ कर सकती है। उसी प्रेम के आधार पर बुराई का खंडन भी कर सकती है। उसी तरह जो स्नेहन कार्य करेगा वही निरसन कार्य का अधिकारी होगा। उसीसे निरसन की शक्ति आयेगी। निरसन में कटुता नहीं रहेगी। निरसन करना जरूरी

है परन्तु पक्ष भेद, जाति भेद इत्यादि जब तक भेद हैं, तब तक समाज में कभी सन्तोष नहीं हो सकता—इसमें मुझे तनिक भी शंका नहीं। उससे आग सुलगती रहेगी। बार-बार चुनाव आते रहेंगे, समाज में भी पेंच खड़े होते रहेंगे, जगह जगह यह दर्शन होता रहेगा और समाज में श्रद्धा का स्थान कहीं नहीं रहेगा। सतत अविश्वास ही रहेगा। इस तरह कदम-कदम पर अविश्वास रखकर समाज चलेगा, तो मानसिक संतुलन कभी होगा नहीं। इसलिए आज की इस व्यवस्था का निरसन अत्यन्त जरूरी है।

सेवा-सेना का कार्य

हमारी स्नेहन-योजना यह है कि एक ऐसी सेवा सेना खड़ी हो जो पक्ष निरपेक्ष, जाति निरपेक्ष धर्म निरपेक्ष हो। पाँच हजार मनुष्यों की समान भाव से सेवा करने के लिए एक सेवा-सैनिक रहे। आज की जैसी समाज-रचना है, उसीको समझकर सेवा की जाय। व्यापारी और ग्राहक में संघर्ष हो, मालिक और मजदूरों में भेद हो, अड़ोसी पड़ोसी में झगड़ा हो, भाई भाई में द्वेष हो, तो ऐसे सब मामलों में झगड़ा खतम करके प्रेम स्थापित करना, मेल मिलाप करना और स्नेह स्थापित करना ही इस सेना का कार्य हो।

यह सेवा-सेना ही शान्तिपूर्वक ग्राम-राज्य की स्थापना करेगी और समाज के सामने नव-समाज का चित्र पेश करेगी। कहीं भी कटुता होने की सम्भावना रही तो यह सेवा-सेना शान्ति सेना का रूप लेगी और अपना बलिदान करके शान्ति की स्थापना करेगी।

व्यापारियों का काम—प्रेम-स्थापन

व्यापारियों का कार्य मुख्यतः सबके अन्दर प्रेम स्थापित करने का है। जहाँ जो कमी है, उसकी पूर्ति करना उनका काम है। हरएक के पास हर चीज नहीं होती। जिसे जिस चीज की जरूरत हो उस तक वह चीज पहुँचाना व्यापारियों का काम है। व्यापारी किसी भी राजनीति का पृष्ठपोषण करते हैं तो वे अपने धर्म से च्युत होते हैं। उन्हें तटस्थ होना चाहिए, सेवापरायण होना चाहिए। चुनावों

के मौके पर उनसे कहा जाता है—पैसा दो। उन पर दबाव आता है। वे बेचारे दब जाते हैं। अगर वे पैसा नहीं देते तो अप्रिय सहनी पड़ती है और देते हैं, तो व्यावहारिक भ्रम होता है। एक बाजू व्यावहारिकता का लोभ होता है और दूसरी बाजू अप्रियता का डर होता है, इसलिए वे दे देते हैं।

व्यापारियों का मुख्य दोष—डर

व्यापारियों का मुख्य दोष 'लोभ' नहीं 'डर' है। हमारे व्यापारियों में सादगी काफी है। कोई आडंबर नहीं है। वे मौज-शौक भी नहीं करते। काफी दान देते हैं। इसके बावजूद वे डरपोक हैं! ऐसा क्यों हुआ, इस पर मैंने बहुत सोचा है।

हिंदुस्तान की समाज रचना में ही एक बड़ा दोष रह गया है। यहाँ पहले ऐसा सोचा गया कि सारा समाज शस्त्र धारण करे, यह ठीक नहीं है। इसलिए शस्त्रों को सीमित करना चाहिए। सब लोगों के शस्त्र रखने से हिंसक शक्ति आती है। वह न आये, इससे एक क्षत्रिय वर्ग के हाथ में शस्त्र रखा गया। 'आर्त्त त्राणाय' कालिदास ने कहा है। आर्तों की मदद के लिए, रक्षण के लिए, हिंसा का क्षेत्र सीमित करने के लिए ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र शस्त्र न रखें। उसमें हेतु अच्छा था। उन्हें गोरक्षा, खेती आदि दूसरे धंधे करने थे। उनमें बड़ा वर्ग वैश्य वर्ग था। शूद्र का कोई काम निर्दिष्ट नहीं था। शूद्र यानी सेवा करनेवाला। ब्राह्मण ज्ञान देनेवाला और क्षत्रिय समाज की रक्षा करनेवाला। क्षत्रिय समाज कम ही रही था। ९ की सदी में बाकी वैश्य वर्ग में। धन-संग्रह कौन करे? वैश्य। ब्राह्मणों के हाथ में शस्त्र नहीं थे, फिर भी वे डरपोक नहीं थे। क्योंकि उनके पास धन नहीं था और उसके रक्षण की जिम्मेवारी भी नहीं थी। व्यापारी पर धन की जिम्मेवारी थी। परन्तु उनके हाथ में शस्त्र नहीं थे। इसलिए वैश्यों को रक्षण करने का काम क्षत्रियों पर आया और क्षत्रियों के धन रक्षण की जिम्मेवारी वैश्यों पर आयी। यह मेरी मीमांसा है।

व्यापारी तीन काम करें

शान्ति-सेना, सेवा-सेना बनाने में व्यापारी पैसे की मदद दें। यह उनका

न्यूनतम काम है। वे खुद भी उसमें भाग लें। अपने परिवार में से एक भाई को इस काम के लिए छोड़ें। इसके लिए उन्हें राजनैतिक पक्ष से हटना पड़ेगा और लोभ से वंचित रहना होगा। अगर वैश्य राजनीति में भाग लेता है, तो वह क्षत्रियों का जामा पहनता है। क्षत्रियों का तो वह धर्म ही है। पर इनका वह धर्म नहीं है। फिर भी ये उसमें भाग लेते हैं, पर हैं डरपोक, इसलिए पाँच पचास खून करवाते हैं—करते नहीं। अन्दर क्षात्र वृत्ति नहीं है, वैश्य-वृत्ति है इसलिए झगड़े खून करवाते हैं। हिंदुस्तान में भी यह देखा गया है। कई जगह झगड़े कराने में उसके पीछे वैश्य होते हैं व्यापारी होते हैं। यह उस समाज पर बहुत बड़ा कलंक है। यह राजनीति में पड़ने का परिणाम है। डर छोड़ने के लिए व्यापारी लोग शांति सेना और सेवा-सेना में आ जायें। उसके लिए वे पैसा दें और अपनी बुद्धि दें और अपना बल भी दें। हिंदुस्तान के व्यापारियों में संगठन की शक्ति का एक अनन्य गुण है नव समाज रचना के लिए वे अपने इस गुण का लाभ दें।

निरक्षर-कार्य में पक्ष भेद जाति भेद मिटाना आता है। इसमें व्यापारी कुछ नहीं कर सकते। यह जिम्मेवारी मैं व्यापारियों पर नहीं डालना चाहता। यह काम उनका नहीं है। इसमें चिंतन करने का समाज को नयी प्रेरणा देने का काम दूसरे लोग करेंगे। व्यापारी चिंतन के काम में योग नहीं दे सकते। उनका डर जब तक रहेगा तब तक वे निर्भय नहीं रहेंगे निंदित होंगे। व्यापारी अगर समाज सेवा का काम उठाते हैं तो निंदित कभी नहीं होंगे। उनसे जो सत्कार्य होते हैं, वे डर के कारण होते हैं। लक्ष्मी जहाँ डरती है, वहाँ एकदम गच्च पकड़ लेती है। वैसे ही व्यापारियों के जरिये हिंदुस्तान में गलत काम हुए हैं। परन्तु ये काम उन्होंने निठुरता से नहीं किये हैं डर से किये हैं।

व्यापारी निर्भयता सीखें

चूहे के सामने बिल्ली बहादुर बनती है, लेकिन कुत्ते के सामने पड़ते ही वह भाग जाती है। सामनेवाले के पास ज्यादा ताकत, शस्त्र आये, तो आदमी डर

थे। फिर सारे देश ने ही उन्हें बापू के नाम से पुकारा राष्ट्रपिता कहा। हम जब कभी बापू के बारे में सोचते हैं, तो हमारा अनुभव यह कहता है कि वे पिता से भी बढ़कर माता थे। अपने देश की सभ्यता में एक वाक्य आता है :

'सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते।

—सहस्र पिता से माता श्रेष्ठ है। बापू में जैसे पितृत्व प्रकट होता था, वैसे मातृत्व भी प्रकट होता था। आज दस साल के बाद भी जब कभी उनका स्मरण करते हैं तो उनके और सब गुणोंके स्मरण से भी अधिक स्मरण उनके वात्सल्य का होता है। उनके इस वात्सल्य का अनुभव समीपवालों ने भी किया और दूरवालों ने भी किया। उसमें किसी प्रकार के भेद के लिए कोई स्थान नहीं है।

प्रेम के लिए शहीद

'शत्रु पर भी प्रेम करो' ऐसी महापुरुषों की सीख है। दुनिया में ऐसे महापुरुष हुए, जिनका व्यवहार से कोई संपर्क ही नहीं रहा। वे शत्रु मित्र से परे थे। परन्तु बापू में हमने ऐसे महापुरुषों के दर्शन किये जो किसी भी व्यवहारी मनुष्य से कम व्यवहारी नहीं थे। वे किसी भी संसारी मनुष्य से कम संसारी नहीं थे। और फिर भी शत्रु पर मित्र के समान प्रेम रखते थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। एक पक्ष उनको अपना शत्रु समझ सकता था फिर भी उस पर भी उनका प्रेम था। आखिर वे शहीद हो गये। वे किस गुण के लिए शहीद हुए, ऐसा अगर देखा जाय, तो कहा जायगा कि प्रेम के लिए। जिन्होंने उनका प्रेम उनके जीते जी कबूल नहीं किया उन्हें उनकी मृत्यु के बाद कबूल करना पड़ा।

गांधीजी महान् हिन्दू

इस आधुनिक जमाने में महात्मा गांधी ने धर्माचरण का जो रूप प्रस्तुत किया वह बेमिसाल था। हिंदू धर्म के वे शत्रु हैं ऐसा समझकर एक हिंदू ने उनकी हत्या की। परन्तु इस जमाने में हिंदू धर्म की इज्जत अगर किसीने सबसे अधिक बढ़ायी तो वह गांधीजी ने बढ़ायी। उन्हींके कारण दुनियाभर में हिंदू

धर्म के स्वरूप के विषय में लोगों का विश्वास पैदा हुआ। दुनिया के लोग कहते हैं कि जिस धर्म के प्रति बापूजी का इतना प्रेम था वह जरूर अच्छा धर्म होना चाहिए। उनके गुणों की स्मृति हमें निरंतर प्रेरणा देगी। इन दस वर्षों में उनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने की हम लोगों ने कुछ कोशिश की है। मैं अपने व्यक्ति के लिए कुछ कहना नहीं चाहता क्योंकि बापू के साथ का मेरा संबंध शब्दों से परे है। परन्तु मुझे कहने में खुशी होती है कि जो तालीम उन्होंने हमको दी उस पर प्रामाणिकता से चलने की कुछ लोगों ने कोशिश की है। यह भगवान् की कृपा है और मैं तो भगवान् की कृपा के सिवा अपने में कोई शक्ति नहीं रखता जिसके आधार से भूदान, ग्रामदान, शांति-सेना इत्यादि बड़ी बड़ी बातें मैं बोल दूँ।

हुबली (मैसूर राज्य)
३०-१-'५८

कर्नाटक के शान्ति-सैनिकों को दीक्षा ३२

आज शांति सेना के लिए कर्नाटक के कुछ कार्यकर्ताओं ने नाम दिये हैं। हम किसी की परीक्षा नहीं करते। हमें उनसे आशा है कि भगवान् के काम में इनका जीवन जावे और इसकी समाप्ति भी उसीके काम में हो। परन्तु जिन्होंने नाम दिये हैं, उनके बारे में यह आशा रखी जायगी कि कभी किसी मौके पर बुलाया जाय तो वे फौरन सब छोड़कर बिना किसी हिचक के निश्चित समय पर निश्चित जगह पर आ पहुँचें। इसके अलावा ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य के काम में सेवा सैनिक के तौर पर वे निरन्तर लगे रहें। जिन्होंने नाम दिये हैं, वे भाई और दूसरे भी भाई सब मिलकर भगवान् के चरणों में शुद्ध निष्काम सेवा समर्पित करने का लक्ष्य करें। शांति सैनिकों को हम दूसरे लोगों से भिन्न एक विशेष वर्ग में दाखिल नहीं करना चाहते। हम कोई वर्ग नहीं बना रहे हैं। यह एक आत्मिक स्वरूप है।

सहधर्मियों के साथ संकल्प

कुछ लोगों का ख्याल है कि ऐसे संकल्प केवल अपने मन में होने चाहिए। लेकिन यह विचार अधूरा है। संकल्प मन में तो होता ही है, अपने जनों के साथ भी होता है। उसके बिना आत्मा का भान नहीं होता। आत्मा किसी देह विशेष में सीमित नहीं है। हम एक देह में हैं लेकिन एक देह में ही कैद नहीं हैं। अन्य देहों में भी हम हैं और हमारी देह में भी अन्य लोग हैं। यह सारा अन्योन्य है। इसलिए सब मिलकर सामूहिक विचार, सामूहिक संकल्प कर सकते हैं। इसमें आडम्बर को स्थान न मिले, प्रदर्शन न हो, यानी किसी तरह से असत्यवृत्ति न आये, यह ध्यान रखना चाहिए। इसी दृष्टि से हमने यह एकान्त स्थान ढूँढ़ा है। केरल में शांति सेना के संकल्प का प्रतिज्ञापूर्वक उच्चारण गम्भीरता से आम सभा में किया गया था। वैसे हम यहाँ भी कर सकते थे। परन्तु हमारा विचार जरा आगे बढ़ा है। हम मानते हैं कि संकल्प के लिए कुछ एकान्त भी आवश्यक है। केवल मन में संकल्प करना और सब जनों में करना, ये दो अलग अलग सिरे हैं। दोनों के बीच भी एक स्थान हो सकता है। मन के साथ विविध जनों में संकल्प करना जो कि अपने विचार के साथ पहले से ही सहानुभूति रखते हों, जो परिचित, अपने ही परिवार के हों। फिर उसे जनता में जाहिर करना ठीक है। इतना हमारे विचार का विकास हुआ है। आज बापू का स्मरण दिन है, तो हमने सोचा कि हम कदम से एक कदम आगे जायें और आम जनता में बैठकर संकल्प करने के बजाय, सहधर्मी लोगों में बैठकर, एकान्त स्थान में संकल्प करें।

अहंकाररहित संकल्प निषिद्ध नहीं

गीता में संकल्पों से छूटने की बात कही है। मैं तो कम-से-कम उसे कभी नहीं भूल सकता। मैं उस विचार को मानता हूँ। वह बात हमेशा मन में रहती है। परन्तु जो संकल्प सहज प्राप्त होते हैं, स्वयमेव आते हैं, वे मनुष्य में अहंकार नहीं पैदा होने देते। गीता ने आरम्भ परित्याग, संकल्प परित्याग की बात कही है, परन्तु जो संकल्प अहंकारमूलक, अहंकारप्रेरित नहीं हैं, जिनके

लिए आज समाज में माँग है, ऐसे संकल्प किये जा सकते हैं। शान्ति-सेना की आज आवश्यकता है, जिस प्रकार आप और हम सहधर्मियों का विचार बना है, उसमें यह विचार अनिवार्य है। अगर हम अहिंसा को न मानते होते तो यह अनिवार्य न होता। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि आज परिस्थिति की माँग है, इसलिए यह चीज स्वाभाविक रूप से आती है। ऐसे इस संकल्प को हम निषिद्ध नहीं मानते। सत्संकल्प संस्थाओं भी इसमें शामिल हो सकता है, ऐसा हमें अभी तक लगता है। अन्यथा गोसेवा का यह काम हम रोक सकते थे। उस काम में उनकी ताकत है कि वह हमें रोके, क्योंकि बचपन से हमारी उस पर श्रद्धा है। परन्तु ऐसे तत्काल परिस्थितिजन्य स्वराज्यप्राप्त और अपने मूल विचारों के लिए अनुकूल संकल्पों की गिनती सत्संकल्प सम्बन्धी के अन्तर्गत आ जाती है।

शान्ति-सैनिक सिर्फ सद्विचार का ही ध्यान रखें

यहाँ पर जो नाम पढ़े गये, उनमें मेरा भी नाम है, ऐसा आपको समझना चाहिए। वैसे मैं भी यह नाम था ही। मैंने मान लिया है कि जब यह विचार पहले मुझे सूझा था, मेरे लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसके बिना जीवन असम्भव है। जिनके नाम सुनाये गये, वे भी अपना कर्तव्य जानते हैं और आप भी। इनका एक अलग लाभ है कि वे एक दूसरे के लिए निरंतर मानसिक सहानुभूति और प्रेम रखें। किसीकी भी बुराई दूसरे किसीके सामने न करें और अपने मन में भी न लावें। सद्विचार ही मन में आयें और सद्विचार का ही उच्चारण करें। कहीं किसीके दोष का भान हो तो उस व्यक्ति के पास एकान्त में जाकर प्रेम से कह दें। यह कम-से-कम जिम्मेवारी हम सब पर आती है। उसके बिना सेना नहीं बनती। शान्ति-सैनिक अपना अपना भी जिम्मेवार है और सामूहिक रूप से भी। हमारी जिम्मेवारियाँ निभाने के लिए यह जरूरी है कि हम लोगों में आपस में कभी भी गलतफहमी का स्थान न रहे।

—कार्यकर्ताओं के बीच, पद-यात्रा में

वैसे विज्ञान प्राचीन काल से चला आ रहा है। जब मनुष्य ने बीज बोना आरम्भ किया तब विज्ञान था, जब मनुष्य ने गाय का दूध निकालने की खोज की तब भी विज्ञान था और जब वस्त्र बनाना शुरू किया तब भी विज्ञान था। उस विज्ञान ने मानव के जीवन पर खूब असर डाला पर उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता निर्माण नहीं की। परन्तु अब यह विज्ञान का जमाना है। इस समय विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि वह मानव में ही परिवर्तन की माँग कर रहा है।

मानव मनप्रधान, प्राणी प्राणप्रधान

मानव भी एक प्राणी है लेकिन उसमें और दूसरे प्राणियों में फर्क है। दूसरे प्राणी प्राणप्रधान हैं और मानव मनप्रधान है। प्राणी हमला करता है तो खूब जोर से दौड़ता है, हमला करता है तब भी जोरों से। उस हमले में मन की प्रधानता नहीं होती प्राण की प्रधानता होती है। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते पर प्रेम से टूट पड़ता है और द्वेष से भी टूट पड़ता है। प्रेम से टूटने पर वह सद्भाव से गिरता है। उस गिरने से कभी कभी जखम भी हो जाता है, पर उसके लिए वह लाचार होता है। प्राणी कूदता है, उछलता है, हमला करता है या कूदता है यह सब प्राण प्रक्रिया है। बच्चे भी इसी तरह करते हैं। बच्चे खेलते खेलते पत्थर फेंकते हैं। किसी खास चीज पर नहीं फेंकते पर फेंकने की प्रेरणा होती है इसलिए फेंक देते हैं। यह प्राण वृत्ति है। मान लीजिये, किसी बच्चे ने पत्थर फेंका और किसी को लग गया, खून बहने लगा। बच्चा जब यह देखता है तो उस पर मानसिक असर भी होता है क्योंकि बच्चे को मन होता है। बच्चे स्थिर नहीं बैठ सकते। वे कभी हाथ हिलाते हैं तो कभी पाँव। कहीं से कोई आवाज आती है तो ऊपर नीचे देखने लगते हैं; क्योंकि उनमें प्राण है। इस तरह उसमें भी प्राण की प्रेरणा होती है। परन्तु मानव प्राण प्रधान

नहीं, मन प्रधान होता है। छोटे छोटे जन्तु तरह-तरह की क्रियाएँ करते हैं, उनमें एकदम मन नहीं होता ऐसी बात नहीं है; परन्तु उनमें मुख्य वस्तु प्राण है, मनुष्य में मुख्य वस्तु मन है। भावना वासना कामना, प्रेरणा आशा निराशा आदि मानसिक वृत्तियाँ मनुष्य में काम करती हैं। डर हिम्मत मान-अपमान आसक्ति अनासक्ति प्रेम द्वेष आदि मनमें मानव की मनोवृत्तियों का खेल चलता है। ऐसे समय में विज्ञान मनुष्य से कह रहा है कि अब तुम्हारी मनोभूमिका नहीं चलेगी। आज जिसे मानसशास्त्र कहते हैं, वह अब बिल्कुल निकम्मा हो जायगा।

मानव भगवान् की हैसियत में

जिस अणु से यह सृष्टि बनी उसकी सारी शक्ति मनुष्य के हाथ में आ गयी है। अणु के साथ अणु जुड़ने से सृष्टि बनती है और अणुओं के अलग अलग हो जाने से सृष्टि का नाश होता है। इस तरह सृष्ट्युत्पादक और सृष्टि संहारक अणुशक्ति मनुष्य के हाथ में आ गयी है। आपने आसमान में एक नया उपग्रह फेंका। वह घूम रहा है। वह एक मशीन की बात है। इसलिए आपका काम अन्तर्राष्ट्रीय चिंतन से नहीं चलेगा। अब तो अन्तर्गोलीय चिंतन की जरूरत पड़ेगी और अनेक ग्रहों के साथ संपर्क रखना होगा। अगर मनुष्य मानसिक भूमिका पर रहकर यह सारा करेगा तो कैसे चलेगा? आज मनुष्य भगवान् की हैसियत में आ गया है। सृष्टि की उत्पत्ति और लय कौन कर सकता है? ईश्वर परन्तु आज वह काम मनुष्य भी कर सकता है। अब अगर उसके अन्दर अपना मन रहा तो बड़ी भारी हानि होगी।

चालीस साल पहले उत्तम वक्ता वही कहलाता था जो जोर-जोर से चिल्लाकर सबको सुना सकता था। लेकिन आज छोटे से आवाजवाला भी लाउडस्पीकर के जरिये लाखों लोगों को अपनी बात सुना सकता है। इस तरह मनुष्य की ताकत बिल्कुल बदल गयी है। अब पुरानी बातें नहीं चल सकतीं। मान लीजिये, आपका और मेरा द्वेष है। अगर पुराना जमाना होता तो हम दोनों कुश्ती कर लेते। उससे क्या नुकसान होता? लेकिन आज 'अमरीका' और 'रूस' में द्वेष हो जाय तो क्या उन दोनों की कुश्ती होगी? वे एटम बम चलायेंगे। जिसका

भयंकर परिश्रम होगा। आज के मानव की समस्या अपने मानस धाम में थोड़ा सा फर्क करने की नहीं है, बल्कि पूरा पुराना मानस-धाम ही खत्म करने की है।

विज्ञान की भूमिका मन से ऊपर

मन के ऊपर की भूमिका विज्ञान की है। आज का विज्ञान आपको उसी भूमिका तक उठाने के लिए जबरदस्ती कर रहा है। पहले के जमाने में भी यह मालूम था। उपनिषदों में कहा है 'प्राणो ब्रह्मेति मनो ब्रह्मेति विज्ञानं ब्रह्मेति।' —प्राण की भूमिका प्राणियों की है, मन की भूमिका मनुष्यों की है और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। पहले के जमाने में वैयक्तिक विकास करते-करते मनुष्य विज्ञान की भूमिका पर पहुँचता था। यह सारा व्यक्तिगत विकास का विचार था। एक मनुष्य विज्ञान की भूमिका में रहता और बाकी सारे लोग मनुष्य की भूमिका में रहते यह हालत थी। विज्ञान की भूमिका में पहुँचनेवाला श्रेष्ठ माना जाता था। वह सारी वैयक्तिक आध्यात्मिक प्रक्रिया थी और उसमें व्यक्ति अग्रसर होते थे, किन्तु अब कोई महापुरुष वैयक्तिक तौर पर विज्ञान की भूमिका प्राप्त करे यह इस जमाने में नहीं चलेगा।

अब सभी लोगों को अनिवार्य रूप से विज्ञान की भूमिका पर आने का नाटक करना होगा। मान लीजिये, मैं बाबा हूँ और नाटक में मुझे हरिश्चन्द्र का पार्ट करना है। मैं यहाँ अपने बाबा को ही याद करता रहूँगा तो हरिश्चन्द्र की भूमिका कैसे होगी! जैसे हरिश्चन्द्र की भूमिका अभिनीत करने के लिए अपना बाबा भूलना होगा वैसे विज्ञान युग में हम सबको अपनी मनोभूमिका भूल जानी होगी और यह भूलेंगे आध्यात्मिक प्रयत्न से। इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान आध्यात्मिक चिन्तन की जबरदस्ती कर रहा है।

'मैं' 'मेरा' छोड़ना आवश्यक है

पुराने ऋषि व्यक्तिगत साधना करते थे। अब सामूहिक साधना करनी होगी। पुराना ऋषि क्या करता था? वह मैं और मेरा छोड़ता था और वैराग्य की भाषा में कहता था कि "यह घर मेरा नहीं है यह गाय मेरी नहीं है, यह शरीर मेरा नहीं है।" अब सामूहिक साधना करनेवाले व्यक्ति को कहना होगा

कि 'यह घर, यह सम्पत्ति, यह खेत आदि मेरा नहीं है, सब समाज का है।" विज्ञान के जमाने में यह अनिवार्य करना होगा। आपके सामने दो ही परिणाम हैं : सामूहिक साधना करना या मर जाना। दो में से एक को चुनिये। या तो आध्यात्मिक साधना करके पृथ्वी पर स्वर्ग लाइये या पृथ्वी के साथ स्वयं और स्वयं के साथ पृथ्वी को भी लेकर खत्म हो जाइये।

लोग हमसे पूछते हैं कि मैं और मेरा छोड़ना बहुत ऊँची बात है, इसलिए आसान कैसे होगा? हम बता देते हैं कि ऊँची भूमिका पर तो आज कुत्ता भी चला गया जो स्पुतनिक में था। क्या आप कुत्ते से भी गये-गुजरे हैं? मानव होकर ऊपर की भूमिका पर क्यों नहीं जा सकते?

नाटक से असली रूप भी सधेगा

मन से ऊपर उठने की बात मैं लगातार कह रहा हूँ और इस बात पर जोर दे रहा हूँ कि हमें 'सुपरमेण्टल' (अतिमानस) की भूमिका पर जाना होगा। 'सुपरमेण्टल' अरविन्द की भाषा है। इसे आपको और हमें प्रयोग में लाना होगा। विद्यार्थी और शिक्षकों को विज्ञान की प्रयोगशाला में यह प्रयोग करना होगा, क्योंकि पुराने देकर कुछ कहानियाँ साहित्य आदि आज सब निकम्मे सिद्ध होंगे। हमें सारा वाङ्मय नया बनाना होगा। धर्म की स्थापना भी नये सिरे से करनी होगी। पुराना धर्म अब नहीं चलेगा। मूर्ति के सामने गये, कपूर जलाया, आरती उतारी और हो गये भगवान् प्रसन्न, यह सब अब नहीं चलेगा। अब तो सारा मानव समाज ही भगवान् की मूर्ति हो गया। मानव को खाना मिलता है या नहीं, यह देखना होगा और सारे मानव समाज को भगवान् समझ कर पूजना होगा। पहले हम नाटक करेंगे। नाटक करते करते आखिर में असली रूप भी सध जायगा।

बचपन में हमने योग शास्त्र पढ़ा था। उसमें वर्णन था कि समाधिस्थ पुरुष कैसे बैठता है। हमने वैसा आसन लगाकर बैठना शुरू तो किया पर हमारा चित्त शान्त नहीं होता था। हम कल्पना तो करते थे कि हमारी समाधि लगी लेकिन

बीच में ही चित्त दौड़ जाता था। उस वक्त हम बड़ोदा में थे। वहाँ गर्मी बहुत ज्यादा पड़ती थी। हमने नल के नीचे बैठकर आसन लगाना शुरू किया। ऊपर से पानी गिरता था, तो हम समझते थे कि हम भगवान् शिव हैं और हमारी समाधि लग गयी। ऐसा नाटक करते-करते कभी-कभी चित्त इतना शान्त हो जाता था कि लगता था कि समाधि लग गयी। शास्त्र के मुताबिक वह समाधि थी या नहीं पता नहीं। परन्तु आनन्द बहुत आता था। मन में किसी प्रकार की कोई वासना नहीं रहती थी।

वेदान्त नहीं, जमाने का व्यवहार

मन से ऊपर उठना आज के जमाने का व्यवहार है, वेदान्त नहीं। आप यह करेंगे, तो पारलौकिक कल्याण होगा; ऐसी बात नहीं बल्कि इससे इहलोक का कल्याण होगा। आज संहार करनेवाला क्या करता है? हिरोशिमा पर बम डाला गया, तो सारा का सारा शहर खतम हो गया। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ पुरुष, पशु, पेड़ कुछ भी न बचे। बम सामूहिक संहार करता है, तो उसके प्रतिकार के लिए हमें सामूहिक उत्पादन सामूहिक प्रेम सामूहिक सहयोग और सामूहिक जीवन की कला सीखनी होगी। समूह में व्यक्ति का मन डूब जाय ऐसी अहिंसा की सामूहिक शक्ति निर्माण करनी होगी।

धारवाड़ (मैसूर राज्य)
११-१-५८

गीता के आधार पर पंचविध कार्यक्रम : ३४

गांधीजी चले गये, लेकिन उन्होंने हमें एक शाश्वत चिरस्थायी और मुक्तिदायी विचार दिया है। वह अहिंसा का विचार है। वह विचार चिरकाल तक काम में आनेवाला और सारी दुनिया का मुक्ति देनेवाला है। अहिंसा अपने देश की माता है। अनेक तत्त्वज्ञानकार, दर्शनकार, आचार्य, सन्त महन्त आदि जितने भी इस देश में हुए वे सब अहिंसा के विषय में सोचते, सोचते और

करते आये हैं। गांधीजी ने जितना इस विषय पर लिखा उतना आत्मज्ञान और ईश्वर के अलावा और किसी भी विषय पर न लिखा, न बोला और न कहा है। यहाँ के साहित्य पर उसका असर है। जीवन का कोई भी अंग उससे अछूता नहीं है। फिर भी गांधीजी ने अहिंसा को हमारे सामने एक वैज्ञानिक ढंग से रखा। उन्होंने कहा कि मूलतः मानव-जीवन की बुनियाद अहिंसा ही हो सकती है।

अहिंसा का अधिष्ठान

गांधीजी के जाने के बाद मैं इस तलाश में था कि इस अहिंसा को भारत के सामाजिक जीवन में किस तरह प्रतिष्ठा हो। आप जानते हैं कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद कैसी घटनाएँ इस देश में घटीं। उन्होंने अहिंसा की आशा को क्षीण किया था। बहुत ज्यादा हिंसा की वारदातें हिंदुस्तान में प्रकट हुई थीं। इसलिए अहिंसा की सामूहिक प्रतिष्ठा कैसे हो, इसकी तलाश में मैं था। परमेश्वर की योजना से मुझे अहिंसा के सामाजिक प्रचार के लिए अधिष्ठान मिला और भूदान का आरम्भ हो गया। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'—मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ और पृथ्वी मेरी माता है। यह मातृस्थान अधिष्ठान मिल गया। पृथ्वी का नाम संस्कृत भाषा में क्षमा रखते हैं, संस्कृत जाननेवालों को यह मालूम है। क्षमा याने पृथ्वी। यह सारी पृथ्वी अहिंसा का उत्तम आदर्श पेश करती है। हम रोज पृथ्वी का ताड़न करते हैं, खोदते हैं, पीड़ा देते हैं। इस पर भी पृथ्वी न सिर्फ क्षमा करती है, बल्कि पोषण भी देती है। इसलिए 'पादस्पर्शं क्षमस्व मे' यह हम बोलते हैं। हे भू माते, तुम्हें हम जो पीड़ा देते हैं और अपने पाँवों से छूते हैं, यह सारा क्षमा कर। अहिंसा के लिए आदर्श मूर्ति, ध्यानमूर्ति पृथ्वी है। उसीकी कृपा से अहिंसा के लिए हमें अधिष्ठान मिला—भूदान, ग्रामदान।

अधिष्ठान के बाद कर्ता चाहिए

गीता में आता है 'अधिष्ठानं तथा कर्ता'। अहिंसा के कार्यक्रम के लिए अधिष्ठान मिल गया तो इन दिनों मेरा सारा चिंतन उस कर्ता को खोजने में

लगा है। देश के सामने एक विचार रखने की सूचना मैंने की है। सारे देश में हर पाँच हजार मनुष्य के लिए एक सेवक के हिसाब से ७० हजार विचारवान्, आचारवान् लोक-सेवक मिलने चाहिए। उनकी एक सेना बनेगी और देश में शान्ति की रक्षा करेगी, तभी यह दूसरा बड़ा साधन हमारे हाथ में आयेगा—'कर्ता'।

साधनों की आवश्यकता

करणं च पृथग्विधम्। तीसरी बात के लिए हमें तरह तरह के साधन चाहिए। इसलिए दो प्रकार के साधनों की अभी हमने माँग की है—सम्पत्तिदान और सम्मतिदान। सम्पत्तिदान याने भगवान् ने जो सम्पत्ति हमें दी है, कम हो या अधिक, उसका एक अंश समाज को समर्पण करके बचे हुए का भोग भोगने का अधिकार मनुष्य को है, अन्यथा भोग भोगने का अधिकार दरिद्र को भी नहीं है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' यह आज्ञा उपनिषद् ने सबके लिए दी है। श्रम हो, सम्पत्ति हो, बुद्धि हो, कुछ न कुछ देने की हमने हरएक से माँग की है। बाकी भोग का अधिकार वे अपना मान लें। ऐसा होगा तो पंचवर्षीय योजना के लिए जो ताकत अधूरी पड़ रही है, वह तो पूर्ण होगी ही और उससे भी बहुत बड़ी ताकत पैदा हो जायगी। पंचवर्षीय योजना की बहुत छोटी सी रकम है। पाँच साल के लिए चार हजार आठ सौ करोड़ रुपये याने हिसाब करने पर मालूम होता है कि सारे भारत में हर मनुष्य के लिए तीन रुपया महीना। यह बहुत ज्यादा नहीं है। सम्पत्तिदान में हर व्यक्ति [illegible] हिस्सा समाज को दे तो इससे बहुत ज्यादा ताकत पैदा हो जाती है। और यह सब धार्मिक ढंग से होता है, इसलिए इससे नैतिक उत्थान होता है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

यह समर्पण योग सधना है। जो कुछ भोग करेगा वह समर्पण करके करेगा। इससे बहुत बड़ी आध्यात्मिक और उतनी ही बड़ी भौतिक शक्ति इस भारत में पैदा होगी।

हर घर से सर्वोदय पात्र में एक मुट्ठी चावल मिले

सम्पत्तिदान यानी सर्वोदय, शान्ति सेना, ग्रामदान, खादी काम में हमारी सम्पत्ति है। उसमें हम यथाशक्ति योग देंगे, ऐसी भावना लोगों में आवे और उसके चिह्न के तौर पर रोज थोड़ा थोड़ा अनाज भी दें। सम्पत्तिदान में कुछ देने की बात है और सम्पत्तिदान में एक मुट्ठी चावल। हर घर में पाँच मनुष्य रहते हैं। एक मुट्ठी चावल मैं मांगता हूँ। चावल हो या कोई भी अनाज हो। फिर लोग उसमें से शान्ति-सेना काम करें, यही उद्देश्य। हर घर से यह मदद मिले। एक मुट्ठी अनाज हर घर से मिले और वह भी छोटे बच्चे की मुट्ठी। यह मेरा एक ख्याल है। घर का बड़ा मनुष्य या माँ सर्वोदय के नाम से एक मुट्ठी चावल डाले, तो ज्यादा चावल आयेगा, इसलिए वह नहीं चाहिए। छोटे बच्चे या बच्ची की मुट्ठी से अनाज मिले। उससे दो तोले या इससे थोड़ा अधिक अनाज 'सर्वोदय पात्र' में पड़ेगा। छोटा बच्चा मैंने क्यों कहा? इसलिए कि रोज खाने के पहले माँ बच्चे से पूछेगी, "अरे, सर्वोदय के मटके में अनाज डाला?" बच्चा अगर भूल गया तो वह कहेगी, "जा, पहले डालकर आ।" इससे सर्वोदय को चावल मिलेगा, सर्वोदय को सम्पत्ति मिलती ही, साथ साथ बच्चों को शिक्षण मिलेगा और धर्म की स्थापना भी होगी। आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति पैदा करनेवाला यह काम मानव धर्म ही है। इसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब आवेंगे। सबके घर में जो सर्वोदय पात्र होगा, वह द्रौपदी के पात्र जैसा होगा।

विविध क्रियाएँ अहिंसा-योग के लिए

अहिंसा योग के लिए 'विविधांग पूजन' सेवा। खादी क्रिया, ग्रामोद्योग क्रिया, ग्राम सफाई क्रिया, नयी तालीम क्रिया, हरिजन उद्धार क्रिया, जाति भेद निरसन क्रिया आदि तरह तरह की क्रियाएँ हैं। जहाँ ये सारी क्रियाएँ एक होंगी, वहाँ अहिंसा योग बनेगा। आज खादी हिंदुस्तान में एक बिन्दुमात्र है। हम खादी का सिन्धु चाहते हैं। हर गाँव में खादी के सिवा दूसरा कपड़ा गाँव में न आवे। लोग अपने गाँव में कपड़ा बनायें, तो ग्राम स्वनिष्ठ है। खादी का अर्थ सिर्फ

मजदूरों को मजदूरी मिलना ही नहीं है। उसके साथ व्यतिकारी शादी की क्रिया भी छूटेगी तभी अहिंसा की प्रतिष्ठा होगी।

आत्मा की व्यापकता का आधार

जो आत्मा मुझमें है वही आपमें है। इस तरह आत्मा की व्यापकता का जहाँ दर्शन होता है, वहीं अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है। गीता ने अहिंसा की प्रतिष्ठा के बारे में कहा है कि आत्मा को सब भूतों में समान रूप से देखने पर परमेश्वर की व्यापक सत्ता का भान होता है। फिर आत्मा आत्मा की हिंसा कर ही नहीं सकता। हम अपनी हिंसा नहीं कर सकते, तब अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है।

> समं पश्यति सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
> न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।
> दैवं चैवात्र पञ्चमम्।

आपको सब काम भगवान् पर आधार रखे बिना नहीं मिलते हैं। यह हमारा पंचविध कार्यक्रम भगवद्गीता के आधार पर रखा गया है :

> अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
> विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥

कारवार (मैसूर राज्य)
१ १ ५८

भारतीय संस्कृति की झलक २५ :

हम 'संस्कृति' शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं। यह एक प्रसिद्ध शब्द है। सभी भाषाओं में इसका उपयोग होता है लेकिन 'संस्कृति' क्या है इसकी सही व्याख्या शायद कोई भी नहीं कर सकता। फिर भी इस शब्द का प्रयोग हम सब करते हैं। 'संस्कृति' शब्द का अर्थ समझने के लिए दो और शब्द समझने

होंगे। प्रकृति और विकृति। इन दोनों शब्दों के साथ संस्कृति शब्द को रखेंगे, तो हमारी संस्कृति कैसी है और कैसी होनी चाहिए, इसका भान हो जायगा।

प्रकृति, विकृति, संस्कृति

भूख लगती है तो प्राणी खाता है, मनुष्य भी खाता है, यह प्राणिमात्र की प्रकृति है। बिना भूख लगे मनुष्य खाता है, भूख से ज्यादा भी खाता है, यह मनुष्य की विकृति है। दूसरे किसी भूखे को खिलाने के लिए मनुष्य स्वयं उपवास करता है, खाना छोड़ता है, यह मनुष्य की संस्कृति है। प्रकृति कभी खराब नहीं होती, विकृति ही खराब होती है। प्रकृति को हम न खराब कह सकते हैं, न अच्छी। वह जैसी है, वैसी है।

हम अपनी संस्कृति का और दूसरे देशों के लोगों की भी संस्कृति का खयाल करते हैं, तो हमें हर जगह की अच्छाई मिल जाती है। मैं आज आपको भारत की एक विशेषता बताना चाहता हूँ, जो उसकी संस्कृति का अंश है। भारत में कुछ दोष भी है, जो उसकी विकृति में शुमार है। उन दोषों का मैं अभी कथन करना नहीं चाहता।

भारत का अनोखापन

भारत एक पुराना देश है। इसके पास दस हजार वर्षों का अनुभव है। उस अनुभव के परिणामस्वरूप कुछ विशेषताएँ यहाँ निर्माण हुई हैं। उनमें एक विशेषता यह है कि यहाँ पर दस बारह उत्तम, विकसित, अर्थ-प्रधान के लिए पर्याप्त और करीब करीब समान योग्यतावाली भाषाएँ बनी हुई हैं। यह स्थिति आज दुनिया में और कहीं नहीं है।

समाजशास्त्र की दृष्टि से भारत दुनिया में बहुत आगे है। यहाँ पर राज्य-पुनर्रचना आयोग के मामले में कुछ शोर और दंगे भी चले फिर भी यह किसीने नहीं माना कि हमारा अलग राष्ट्र हो। हम सारे भारतीय हैं, यह सब मानते हैं। मामला तो न किया कुछ बचाएँ चलती हैं। इन दिनों उत्तम कुछ कटुता भी आयी है परन्तु वह हृदय के अन्दर की चीज नहीं है। जब कभी यूरोप का संघ होगा तब आज का भारत उसके लिए नमूना बनेगा। मुझे

मालूम नहीं कि भारतीय समाजशास्त्र की योग्यता यूरोप के पास कब आयेगी ? क्या और दो तीन विश्वयुद्ध लड़ने के बाद आयेगी ? क्या फिर दुनिया शेष रहेगी ? कोई नहीं कह सकता। मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि यह भारत एक अन्तरराष्ट्रीय है। हमने ऐसा राष्ट्र बनाया है जिसमें विश्व मानव होने की योग्यता है। यही हमारे धर्म की विशेषता है। इसे विकसित करना ही 'भारत धर्म' है।

अंग्रेजी के कारण भारत एकता की बात गलत

बहुतों का यह ख्याल है कि अंग्रेज यहाँ आये, तब हम जागे और अंग्रेजी भाषा के कारण हम एक राष्ट्र बने। यह बिल्कुल ही गलत ख्याल है। अंग्रेजों ने भारत का जो इतिहास लिख रखा है उसमें उल्लेख किया है कि भारत के मराठे राजपूत आदि लोग आपस-आपस में लड़ते थे यह युद्ध चलते थे। यह बात सही है और यह भारत के लिए गौरव की बात है। फ्रांस और जर्मनी के बीच जो लड़ाइयाँ होती है उन्हें ये लोग गृह-युद्ध नहीं राष्ट्रीय युद्ध कहते हैं। फिर मराठों और राजपूतों के बीच जो लड़ाई हुई, वह कैसे गृह-युद्ध हुआ ? स्पष्ट है कि भारत एक देश है। अंग्रेजों ने उसे एक देश नहीं बनाया। अंग्रेज इतिहासकारों ने मान्य किया है कि यह एक देश है। इसके बिना गृह युद्ध का आक्षेप नहीं आता। इतिहास पढ़नेवालों को मालूम है कि कभी कन्नडिगों ने कन्याकुमारी तक का प्रदेश अपने अधिकार में किया तो कभी तमिलों ने उड़ीसा तक का प्रदेश, कभी मगध ने पंजाब तक का प्रदेश अपने अधिकार में लिया। ये सब गृह युद्ध हैं। यह घटना भारत के लिए गौरव की बात है। भारत को एक बनाया संस्कृत भाषा ने अंग्रेजी ने नहीं। यह जो संस्कृति शब्द है, वह संस्कृत से बना है और उस जमाने में भी जब कि आज के जैसे यातायात के साधन नहीं थे। संस्कृत में 'दुर्लभं भारते जन्म' ऐसा वचन आता है 'दुर्लभं महाराष्ट्रे जन्म' या 'दुर्लभं गुर्जरे जन्म' ऐसा वचन नहीं आता।

ऋग्वेद में भारतीय एकता का दर्शन

भारत की एकता का दर्शन ऋग्वेद में होता है। उसके एक सूक्त में कहा गया है कि भारतमाता मानो प्राणायाम कर रही है। प्राणायाम में योगी साँस

चलाया है। आज सोचते हैं, ऐसा न करकर आगे सोचेंगे ऐसा कहा है। 'स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्'—याने हम अपना कोई विचार दुनिया पर लादेंगे, ऐसी बात नहीं है। उनका अपना अपना चरित्र कैसा होना चाहिए, यह शिक्षा भारत से सबको मिलेगी। यह भारत की व्यापकता है। गीता में कहा गया है कि जिस मनुष्य में जिस प्रकार की श्रद्धा होगी उसे मैं अचल करूँगा उसका खण्डन नहीं करूँगा। मैं किसीकी श्रद्धा को काटूँगा नहीं बल्कि उसे दृढ़ करूँगा। वह अपनी श्रद्धा के मुताबिक फल पायेगा—मेरा यह काम नहीं कि एक इसाई को हिंदू बनाऊँ या एक मुसलमान को इसाई बनाऊँ। मेरा काम है कि मुसलमान को अच्छा मुसलमान बनाऊँ, ईसाई को अच्छा ईसाई और हिंदू को अच्छा हिंदू बनाऊँ। आप जिस भूमिका में हैं उसमें आप अच्छे बनें। 'स्वं स्वं चरित्रं' अपना चरित्र हम किसी पर लादें नहीं। यह किताब को तभी पढ़ोगे नहीं तो नरक में जाओगे ऐसा नहीं है। हिंदू कौन सी किताब पढ़ता है? कोई गीता पढ़ता है, तो दूसरी किताब देखता भी नहीं है, कोई भागवत पढ़ता है तो रामायण नहीं पढ़ता। कोई तुलसी रामायण पढ़ता है तो वाल्मीकि रामायण नहीं कोई परमेश्वर के वचन पढ़ता है तो और कोई किताब नहीं देखता। याने यहाँ इतनी व्यापकता है कि आपको एक ग्रंथ कबूल करना ही चाहिए या कोई एक गुरु मानना ही चाहिए, ऐसा आग्रह नहीं है। कृष्ण भगवान् और रामचन्द्र कौन थे? हिंदू धर्म के असंख्य महापुरुषों में से दो महापुरुष। कोई भगवान् कृष्ण को परिपूर्ण रूप में देखता है तो कोई रामचन्द्र को। यह मर्जी की बात है। हिंदू धर्म में यह आवश्यक नहीं है कि हरएक को कृष्ण की ही उपासना करनी चाहिए या राम को ही मान्य पुरुष मानना चाहिए। उसके धर्म में रामोपासना भी आती है और कृष्णोपासना भी निर्गुण उपासना भी आती है और सगुण उपासना भी। सगुण उपासना में साकार उपासना आती है। साकार में भिन्न भिन्न आकार की उपासना आती है। इसका अर्थ है 'स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्'। आपका अपना जो धर्म है उसे आप आचरण में कैसे ला सकते हैं इसकी युक्ति हम आपको बतायेंगे। हम अपनी श्रद्धा दूसरों पर लादने की कोशिश नहीं करेंगे। मानवमात्र के एक होने में यह बहुत बड़ी बाधा है कि मनुष्य इस

अंगूर दीखते हों तो भी चोर नहीं खायेगा। उसे उनका आकर्षण ही नहीं होगा। मनुष्य की प्रकृति में शाकाहार और मांसाहार दोनों हैं। किसीने तय किया कि मैं मांस नहीं खाऊँगा तो यह संस्कृति है। आपकी संस्कृति में मांसाहार परित्याग इसलिए आया क्योंकि अहिंसा उसका मूलाधार बनी। अहिंसा मूलाधार इसलिए बनी क्योंकि इतने सारे भिन्न भिन्न मानवों को एकत्र रखने की महत्त्वाकांक्षा भारत ने रखी है। यह घटना सौ दो सौ सालों में नहीं हुई। यह बहुत पुरानी घटना है जिसे हम गलती से प्रागैतिहासिक काल कहते हैं, उसमें यह हुई है। वास्तव में कोई प्रागैतिहासिक काल जैसा काल ही नहीं है। लेकिन हमें जितना मालूम है उसे हम इतिहास कहते हैं और जो नहीं मालूम, उसे प्रागैतिहासिक काल कहते हैं।

अब प्रांतीय बनने में विकृति

अब अगर हम प्रांतीयता पकड़ रखेंगे तो खतम हो जायेंगे। यहाँ जो 'संयुक्त महाराष्ट्र' बना है यह भी एकीकरण की प्रक्रिया होनी चाहिए, विभाजन की नहीं। इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि भारत का विभाजन किया बल्कि यह होना चाहिए कि मराठी बोलनेवाला प्रदेश पाँच टुकड़ों में बँटा हुआ था उसका एकीकरण किया गया। अर्थ किस तरह किया जाता है, यह देखने की बात है। अगर भाषानुसार प्रांत रचना का यह अर्थ हुआ कि गुजरातवाले और महाराष्ट्रवाले अलग हुए, तो उसे प्रकृति कहा जा सकता है। लेकिन संस्कृति की प्राप्ति के बाद प्रकृति में आना विकृति होगी। कोई फ्रांसीसी अपने को फ्रांसीसी कहता है तो यह उसकी प्रकृति है। लेकिन कोई महाराष्ट्रवाला कहे कि मैं गुजरातवाले से भिन्न हूँ तो इसका मतलब यह होगा कि संस्कृति की ऊँचाई पर पहुँचा हुआ व्यक्ति नीचे गिर गया। फ्रांस और जर्मनी का अपना अपना अभिमान रखना गिरावट नहीं होगा क्योंकि उन्हें अभी ऊँचा चढ़ना है। हम ऊँचे चढ़े हुए हैं। नीचे बैठे हुए का नीचे रहना और ऊपर से गिरकर नीचे आनेवाले का नीचे आना इनकी बराबरी नहीं हो सकती। इसलिए हम कन्नड़भाषी या और लोग, तो फ्रांस और जर्मनी की भूमिका में

अंगूर बीनते हों तो भी ढोर नहीं खायेगा। उसे उनका आकर्षण ही नहीं होगा। मनुष्य की प्रकृति में शाकाहार और मांसाहार दोनों हैं। किसीने तय किया कि मैं मांस नहीं खाऊँगा तो वह संस्कृति है। आपकी संस्कृति में मांसाहार परित्याग इसलिए आया क्योंकि अहिंसा इसका सूत्रधार बनी। अहिंसा सूत्रधार इसलिए बनी क्योंकि इतने सारे भिन्न भिन्न मानवों को एकत्र रखने की महत्वाकांक्षा भारत ने रखी है। यह घटना दो दो सौ सालों में नहीं हुई। यह बहुत पुरानी घटना है जिसे हम गलती से प्रागैतिहासिक काल कहते हैं उसमें यह हुई है। वास्तव में कोई प्रागैतिहासिक काल जैसा काल ही नहीं है। लेकिन हमें जितना मालूम है उसे हम इतिहास कहते हैं और जो नहीं मालूम, उसे प्रागैतिहासिक काल कहते हैं।

अब प्रांतीय बनने में विकृति

अब अगर हम प्रांतीयता पकड़ रखेंगे तो खतम हो जायेंगे। यहाँ का संयुक्त राष्ट्र बना है उसमें भी एकीकरण की प्रक्रिया होनी चाहिए, विभाजन की नहीं। इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि भारत का विभाजन किया गया था वह होना चाहिए कि करीब [illegible] पाँच टुकड़ों में बँटा हुआ था उसका एकीकरण किया गया। अब जिस तरह किया जाता है वह करने की बात है। अगर भाषानुसार प्रांत रचना का यह अर्थ हुआ कि [illegible] और [illegible] अलग हुए तो उसे प्रगति कहा जा सकता है। लेकिन संस्कृति की प्रगति के बाद प्रगति में आगे विकृति होगी। कोई प्रांतीय अपने को [illegible] मानता है तो वह उसकी प्रगति है। लेकिन कोई यह समझता है कि मैं दूसरों से भिन्न हूँ तो इसका मतलब यह होगा कि संस्कृति की ऊँचाई पर पहुँचा हुआ व्यक्ति नीचे गिर गया। फ्रांस और जर्मनी का अपना अपना अभिमान रखना जितना सही होगा क्योंकि उन्हें अभी ऊँचा चढ़ना है। हम [illegible] हैं। [illegible] नीचे रखना और ऊपर में [illegible] अन्तर [illegible] आना होना था [illegible] नहीं हो सकती। हमें [illegible] और जर्मनी की भूमिका में

नहीं आयेंगे, बल्कि मनुष्य नीचे गिरेंगे। वह विकृति होगी। इसलिए होना यह चाहिए कि हमने कर्नाटक के पाँच टुकड़ों को एक करके एकीकरण की प्रक्रिया शुरू की। अब उस प्रक्रिया को आगे संयुक्त भारत और फिर संयुक्त विश्व बनाना चाहिए। अगर हमारे मन में भाषानुसार प्रांत रचना का ऐसा अर्थ बैठ जाय, तो वह अहिंसा का झंडा दुनिया में फहराने का कारण होगा। उसका मतलब यह होगा कि आपने भाषानुसार प्रांत रचना करके संयुक्त विश्व की तरफ कदम बढ़ाया है।

धारवाड़ (मैसूर राज्य)
१-१-'५८

ग्रामदान में तकलीफ नहीं, सहयोग है : २६

हम गाँव में कोई त्याग कराने के लिए नहीं आये हैं। पहले स्वराज्य लेना था, तब देश के लिए सिपाहियों को प्राण-त्याग भी करना पड़ा। उस हालत में कुछ लोगों ने काफी त्याग किया। कुछ लोग फाँसी पर भी चढ़े और उन्होंने महान् काम प्राप्त किया। धर्म-कार्य में जिन्होंने देह समर्पित की, उनको अच्छी गति मिलती है। उन्हें कोई नुकसान नहीं होता, पर उनके घरवालों को जरूर कुछ तकलीफ होती है। देश का स्वराज्य प्राप्ति जैसा बड़ा काम तकलीफ के बिना बनता भी कैसे? जो तकलीफ हुई, उसको ताप नहीं, तप कहते हैं। वहाँ के लोगों ने भी तप किया था, लेकिन अब यह बाबा आपको तप भी करने के लिए नहीं कहता और न आपको ताप ही देगा। मनुष्य का काम केवल तप से नहीं चलता। उसे कुछ भोग भी चाहिए। आपने तप तो कर लिया, अब हम आपको भोग की बात सुनाने आये हैं।

सर्वोत्तम भोग क्या और कैसे?

माँ [illegible] को अच्छी तरह से खिलाती है, फिर मेहमानों को खिलाती [illegible] अपने शरीर को सर्वोत्तम भोग मिलता है। अगर

माँ बच्चों की और परवालों की परवाह न करे, तो क्या घर में भोग मिलेगा ? जो गाँव के सोचनेवाले लोग हैं उनका काम है कि वे सारे गाँव को एक बाप हैं। जैसे माँ और बाप घर के लिए सोचते हैं वैसे गाँव का सोचनेवाले लोग सारे गाँव के लिए सोचें। सारे गाँव को किस तरह से भोग मिलेगा संपत्ति कैसे बढ़ेगा इसका विचार करना चाहिए। मान लीजिये, हमने कहा कि भाई, तुम लोग किसान हो। तुम्हारे खेत में पानी का इन्तजाम नहीं है कुआँ खोदो। तो क्या आप ऐसा कहोगे कि यह तकलीफ देने के लिए आया है। कुआँ बनाना मेरी बड़ का काम है। यह काम करेंगे, तो आपके खेत में पानी आवेगा। उससे आपकी फसल बढ़ेगी। यह त्याग की बात नहीं है भोग की बात है। फिर हमने कहा ऐसो मार्ग तुमको भूख लगेगी। जरा लकड़ी लाओ और रसोई बना लो। तो तुम क्या कहोगे कि एक बार हमने 'करवाली पालक' में तकलीफ भोग की अब ये दुबारा तकलीफ दे रहे हैं। यह त्याग है या भोग की तैयारी है ? खेती में पानी चाहिए, इसलिए कुआँ बनाने में जरूर तकलीफ होती है, लेकिन वह भोग के लिए है।

उत्तम भोग का उत्तम साधन ग्रामदान

तुमने स्वराज्य के लिए बहुत त्याग किया अब तुमको भोग मिलना चाहिए, इसलिए ग्रामदान की बात है। पर लोगों को डर लगता है। वे देखते हैं कि कानून से भी उनका हक कम हो गया है। पहले मालिकों को दूसरा-तीसरा हिस्सा मिलता था। फिर चौथा पाँचवाँ मिलने लगा और अब छठा हिस्सा मिलता है। अब बाबा आया तो उसमें से भी लेना चाहता है। लेकिन बाबा उसमें से लेना नहीं चाहता। कानून का तरीका और है, बाबा का तरीका और। बाबा की योजना के अनुसार पाँचवाँ और छठा नहीं आपको आधा और पूरा भी मिल सकता है।

ग्रामदान का अर्थ

जितनी पैदावार बढ़ाओगे, उतनी ही वह बढ़ेगी। पैदावार बढ़ाने के लिए सब लोगों को एक होकर काम करना चाहिए सहयोग होना चाहिए। गाँव का कोई

कपड़ा गाँव के बाहर नहीं जाना चाहिए। जमीन को गाँव से एक कौड़ी भी नहीं मिलनी चाहिए। यह कोई गाँव के नुकसान की बात है क्या? आपके गाँव का पैसा बनिये के घर जायगा, तो आपको खुशी होगी? आप लोगों ने ग्रामदान के नाम से बहुत तकलीफ उठायी। अब क्या तकलीफ उठाते हो? आपकी एक-एक तकलीफ दूर करने की जरूरत है। आपका एक पैसा गाँव से बाहर नहीं जाना चाहिए। किसीके घर में शादी होती है, तो वह कर्ज निकालता है और उसीको जन्म भर चुकाते रहता है। ग्रामदान के गाँव में क्या होगा? शादी का खर्च गाँव के हरएक घर से आयेगा। शादी याने गाँव का सार्वजनिक उत्सव। किसीको कर्ज निकालने की जरूरत ही नहीं। इसमें किसीका क्या नुकसान होगा? आप सब लोग प्रेम से मिल जाओ और सारे गाँव को एक परिवार बनाओ, यह ग्रामदान का अर्थ है। आपका प्रेम गाँव के दूसरे भाइयों को मिले, उनका आपको मिले। आपकी जमीन का थोड़ा हिस्सा उन्हें और उनके श्रम का हिस्सा आपको मिले। आपका धन और उनकी भक्ति। इस तरह दोनों एक हो जायें। बड़े लोगों के पास धन है, छोटों के पास भक्ति है। बड़ों के पास जमीन है, छोटों के पास श्रम। बड़ों के पास योजना-शक्ति है, छोटों के पास काम करने की ताकत। इसी हालत में आप सब एक हो जायें, तो सारा गाँव एक परिवार बन जाय।

ग्रामदान में जमीन की व्यक्तिगत मालकियत नहीं रहेगी, इसमें कोई घबड़ाने की बात नहीं है। अब जमीन रखी नहीं जायगी, रेहन भी नहीं रखी जायगी। आज तक कितनी ही जमीन रखी गयी, कितनी ही रेहन में गयी और कितनी ही बिक गयी। शहर के कितने साहूकार गाँवों की जमीन के मालिक हो गये। लेकिन ग्रामदान के बाद इस तरह से जमीन खोने का मार्ग बन्द हो जायगा। ग्रामदान में जमीन गाँव की रहेगी, तो किसी व्यक्ति के हाथ में उसे खोने का अधिकार नहीं रहा। इसमें लाभ ही है। फिर भी पसन्द होगी वह बात गाँव मानेगा।

याचना कैसी हो?

हर एक का ध्यान में काम रखना ही चाहिए, ऐसा भी नहीं है। गाँव के लोग

तय करें कि अपनी खेती के लिए इतने लोग चाहिए। बस उतने लोग खेत में काम करें। बाकी के लोगों के लिए दूसरे ग्रामोद्योग रहें। सब लोग बैठ करके हरएक को सुख सुख बाँटें। जो चार किसानों को एकत्र खेती करनी हो तो वे करें। अलग अलग करनी हो तो जमीन अलग अलग रखें। ग्रामदान में हरएक का जमीन पर हक होगा लेकिन हरएक को जमीन देनी ही चाहिए, ऐसा नहीं। हरएक जमीन माँगेगा भी नहीं। कोई बढ़ई है। वह कहेगा कि मुझे जमीन नहीं चाहिए। मैं आप लोगों की सेवा करूँगा। तो फिर गाँव क्या करेगा? उसके नाम पर जमीन नहीं रखेगा। फसल जब आयेगी तब उसका एक हिस्सा मिलेगा। याने उसका भी हक आ गया। यही पुराने जमाने में होता होता था। बढ़ई को फसल का एक हिस्सा, कुम्हार को फसल का एक हिस्सा, मेहतर को फसल का एक हिस्सा, गुरुजी को फसल का एक हिस्सा—याने हरएक का जमीन पर हक था। परन्तु हरएक काश्त करता था ऐसा नहीं। फसल ज्यादा आयेगी तो कुम्हार के हिस्से में भी ज्यादा आयेगा और कम आयेगी, तो कुम्हार के हिस्से में भी कम आयेगा।

ग्रामदान से सुख

सूत का धागा खींचने से टूट जाता है। तीन सूत एक करके जोड़ दिये जायें तो फिर नहीं टूटेंगे। उसी तरह समाज में श्रमवाले, पैसेवाले और जमीनवाले हैं। ये तीनों अलग-अलग समाज के धागे हैं। इन तीनों को जोड़ दो और ग्रामदान कर दो तो नहीं टूटेंगे। इसलिए इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है। अगर इसमें किसीको तकलीफ हो तो ग्रामदान नहीं करना चाहिए। अगर ग्रामदान के बिना भी आप सुखी हो सकते हैं तो उसमें हम भी सुखी हैं। लेकिन हमें विश्वास है कि ग्रामदान से ही गाँव सुखी होगा।

जामरे (मैसूर राज्य)
१०-१ ५८

गूँजना चाहिए। आज का यह दृश्य देखकर हमारे दिल को बड़ी तसल्ली मिली क्योंकि बहनों को काम मिलेगा तो वे टिक सकती हैं। अगर आप भी चाहते हैं कि वे टिकें तो उसके लिए आप सब गाँवों के शेष निवासियों को यह व्रत लेना होगा कि वहाँ के कातकर बनाये से उत्पन्न हुआ कपड़ा ही लेंगे दूसरा नहीं लेंगे। यहाँ के सारे लोग मिल का कपड़ा पहनेंगे, तो सरकारी मदद से थोड़े दिन चरखा टिकेगा। परंतु यह इसका रास्ता नहीं है। किसान खेती करेगा और अन्न खायेगा नहीं तो खेती कैसे टिकेगी? एक किसान अपना अनाज बेचेगा और आस्ट्रेलिया का सस्ता अनाज खरीदेगा तो भी खेती नहीं टिकेगी। जो चीज हम उत्पादन करते हैं, उसे अगर हम ही इस्तेमाल नहीं करते तो अपने धंधे पर हम ही प्रहार करते हैं। इसलिए खादी पहनना ही आज का धर्म है। आप तय कीजिये कि आज का आपका कपड़ा फटने के बाद आप सिर्फ खादी पहनेंगे और गाँव की ही खादी पहनेंगे। खादी भी बाहर की नहीं होनी चाहिए। यहीं के सूत की खादी पहनना धर्म है। आसपास के लोगों को अगर हम नहीं बचाते हैं, तो कौन बचायेगा? दया कहाँ रहेगी? खादी पहनेंगे, तो दया की भावना रहेगी। मान लीजिये, आपका साल भर में २० गज कपड़ा लगता है। मिल का कपड़ा इस्तेमाल करते हैं, तो १५ रुपये खर्च होते हैं और खादी पर ३० रुपया। तब आप ३० रु० की खादी लीजिये। उसमें से १५ रु० की खादी हुई और १५ रु० की दया करुणा और प्रेम हुआ ऐसा मानिये। पंद्रह रुपये धर्मखाते लिखिये। फिर दूसरी यात्रा की और दान धर्म की जरूरत ही नहीं रह जायगी।

किसान खादी से ही टिकेगा

गांधीजी बार बार कहते थे कि हिंदुस्तान का किसान खादी के बिना नहीं टिकेगा। वे अनुभवी थे। उन्होंने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा पायी थी। इंग्लैंड का हाल भी देखा था। उनका कहना था कि अगर हम खादी इस्तेमाल नहीं करेंगे तो न किसान की रक्षा होगी और न बहनों की रक्षा होगी। खादी में बहनों को घर में ही उद्योग मिलता है। धर्मशास्त्र में लिखा है कि पुराने ब्राह्मण जनेऊ पहनते थे, — या तो अपना स्वयं काता हुआ या किसी के हाथ का कता

हुआ करता था। इसका अर्थ यह है कि विद्यार्थियों का घर बड़े बंधा मिलता था। इन दिनों केवल विद्यार्थियों को नहीं, बल्कि गृहस्थाश्रम वालों को भी घर कैसे बसा मिलता है। अगर घर में रसोई न करें और होटल का खाना खाने लगें तो सबके बेकार बनेंगी। आज घर में रसोई रहती है। उससे स्वच्छ सुन्दर भोजन मिलता है। जैसे रसोई घर में रहती आई, वैसे ही बच्चों के हाथ में कपड़ा कातने और बुनने का काम आ जाय, तो उनकी शक्तियाँ बढ़ जायेंगी।

गांधीजी रोज कातते थे

स्वराज्य का यह पवित्र कार्य पुनः शुरू करने की बात महात्मा गांधी ने बतायी। अहमदाबाद में नदी के एक किनारे आश्रम था और दूसरे किनारे पर मिलें। गांधीजी कहते थे "यह देखो, हमारा दुश्मन सामने खड़ा है। उससे हमें लड़ना है।" वे स्वयं रोज कातते थे। जिस दिन वे गये, उस दिन भी कातकर ही गये। अगर वे न कातते तो क्या पाप होता? वे दुनिया की सेवा करते थे। आधा घंटा वे न कातते तो क्या पाप होगा? वे कितना कपड़ा पहनते थे? फिर भी वे कातते थे। क्योंकि वे सारे समाज को तालीम देना चाहते थे। गीता में लिखा है कि श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही आचरण दूसरे लोग भी करते हैं। केवल बोलने से असर नहीं होता। इन दिनों 'अधिक अन्न उपजाओ' कहनेवाले क्या खेती का काम करते हैं? अपने बगीचे में भी वो साग पेड़ को पानी देते हैं? 'अधिक अन्न उपजाओ' पर व्याख्यान देने से नहीं बनता है, आचरण का परिणाम होता है।

भूखों को प्रसन्न करें

हमारे सामने ये सारे लोग बैठे हैं, वे सब नारायण ही हैं। उन सबको अन्न मिलना चाहिए। इसमें भगवान् की सही सेवा होगी। यहाँ के ऋषियों का पूछना यह है कि नारायण ने मानव में क्या लिखा है? वह कौन है? 'बुभुक्षमाणा [illegible]।'—भूखा मनुष्य यह भगवान है। इसलिए भूखों को प्रसन्न करना ही भगवान् की सेवा है।

हर घर में सर्वोदय-पात्र हो

आज के दिन मैं यह बात खास तौर से कहना चाहता हूँ कि आपके हर एक घर में एक-एक सर्वोदय पात्र हो। अपने घर के बच्चे के हाथ से एक मुट्ठी चावल रोज उसमें डाला जाय। खाने के पहले बच्चा यह काम करे। बड़े मनुष्य की मुट्ठी नहीं चाहिए, उसमें ज्यादा अनाज आयेगा। मुझे ज्यादा अनाज का लोभ नहीं है। मुझे बच्चे की मुट्ठी चाहिए। एक महीने में पात्र में जितना आये उतना 'चाईल्ड मास्टर' को दे देना, उसको खाने के लिए नहीं सर्वोदय का काम करने के लिए। वे आपके जिले में चालीस साल से काम कर रहे हैं। वे किस शक्ति से काम करेंगे? वे चाहते हैं कि कार्यकर्ता उठें और घर-घर, गाँव-गाँव जायें। इन कार्यकर्ताओं को कौन खिलायेगा? ये सर्वोदय-पात्र। इससे किसी पर भार नहीं पड़ेगा। बच्चों को समाज को दिये बिना खाना नहीं यह तालीम मिलेगी। गरीब हो तो भी उसके घर में यह सर्वोदय पात्र होगा। उसका बच्चा भी रोज एक मुट्ठी भर अनाज उसमें डालेगा। इससे बहुत बड़ा काम बनेगा।

असन्तोष का कारण हिंसा

अपने इस देश में सर्वत्र असंतोष है।

जब तक यह असंतोष नहीं मिटता तब तक किसी न किसी कारण से हिंसा फूट निकलेगी। आज वही तो हो रहा है। फिर गोलियाँ चलती हैं, दंगे होते हैं। और इन दंगों को शांत करने के लिए सरकार को पुलिस रखनी पड़ती है। उसका खर्च लोगों पर आता है और गरीबों की उन्नति नहीं होती। इसलिए हमें कम-से कम यह निश्चय करना होगा कि देश के अंतर्गत हम अहिंसक ढंग से शांति रखेंगे।

गांधीजी सर्वप्रथम शांति-सैनिक

बाहर के खतरे के लिए हमने सेना रखी है। उसमें से हम कैसे मुक्ति मिलेगी यह हम आगे देखेंगे। परंतु देश में कहीं भी दंगा होंगे वहाँ हम और शांति-सेना के जरिये शांति रखेंगे। ऐसा पुरुषार्थ हमें भारत में करना चाहिए।

यह महात्मा गांधी की इच्छा थी। वे शांति-सैनिक बने और उन्होंने बलिदान दिया। हमारे सामने आदर्श खड़ा करके, विचार रखकर वे गये। उन्होंने कहा कि तुम शांति-सैनिक बनो, यह काम करो न करो, मैं तो यह करके चला। राह दिखाकर वे गये। शांति-सेना के वे पहले सेनापति थे और पहले शांति-सैनिक थे। उनके स्मरण में आज हम यहाँ बैठे हैं, तो अब बार-बार कहिये कि, यह भारत का एक बहुत बड़ा तीर्थक्षेत्र है, सूर्य से जैसे किरणें फैलती हैं, वैसे ऐसे स्थानों से सद्विचार फैलने चाहिए।

बोम्मई (मैसूर राज्य)
१९-१-५८

स्वतंत्र भारत और अंग्रेजी : ३८ :

विद्यार्थियों का एक प्रश्न यह है कि 'अंग्रेजी भाषा के बारे में आपकी क्या राय है ?" भारत में जब से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य चला, शिक्षण का सवाल उठा। एक विचार यह था कि पुराने ढंग से तालीम दी जाय, परन्तु मेकाले के कारण सरकार ने यहाँ अंग्रेजी चलायी। केवल अंग्रेजी सिखायी ऐसा नहीं, अंग्रेजी द्वारा ही सारी तालीम दी जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि हिंदुस्तान में दो वर्ग हो गये—शिक्षित और अशिक्षित। डेढ़ सौ साल के अंग्रेजी राज्य में सिर्फ १ % लोग शिक्षित हुए और ९ % लोग अशिक्षित। शिक्षित और अशिक्षितों के बीच अंग्रेजी के कारण एक दीवार खड़ी हो गयी। इससे हिंदुस्तान का बहुत नुकसान हुआ। कोई भी ज्ञान देहात तक नहीं पहुँच सका। अंग्रेजी पढ़नेवाले यह मान बैठे कि जो विद्या वे सीखे हैं, वह बहुत अच्छी है। अब वे अंग्रेजी के सिवा दूसरी भाषा में बोल ही नहीं सकते। अंग्रेजी बहुत समृद्ध है। लेकिन वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं है। अंग्रेजी से हमारी भाषा में शक्ति कम नहीं है। यह मैं कोई अभिमान से नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि दुनिया की और हिंदुस्तान की १ २ भाषाओं का ज्ञान मुझे है। अतः मैं तुलनात्मक दृष्टि से ही यह बात कह रहा हूँ।

भाषा की शक्ति

भाषा का सामर्थ्य धातु सामर्थ्य है। जिस भाषा में जितने धातु हैं, उस पर उसकी शक्ति निर्भर रहती है। नामों का बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं है। 'स्पटर स्नीकर' जिसने बनाया उसने उसे 'स्पटरस्नीकर' नाम दे दिया। यह शब्द हमारी भाषा में न हो, तो यह हमारी भाषा की कोई कमी नहीं है। ऐसे शब्द हम दूसरी भाषाओं से ले सकते हैं। हम लेते भी हैं। जैसे मोटर, स्टेशन, टेबुल आदि लिये हैं। ऐसे नामों की संख्या शब्दों की तादाद में बढ़ेगी। छोटे-छोटे यंत्रों के पुरजे होते हैं, उनके अलग-अलग नाम होते हैं। कोई कम्प्लेक्स मशीन हो, तो बहुत-से नये शब्द याद करने होते हैं। बहुत बड़ी डिक्शनरी बनती है। उससे भाषा की शक्ति बढ़े ऐसा नहीं है। व्यवहार बढ़ाया तो शब्द बढ़े। उन शब्दों की हमारी भाषा में कोई कमी है ऐसा भी नहीं है। ऐसे शब्द अपनी भाषा में बाहर से लेने में कोई हर्ज नहीं है। भाषा की शक्ति धातु की शक्ति होती है। अधिक-से-अधिक धातु ग्रीक में हैं। उससे बिलकुल ही कम धातु कन्नड़ में हैं ऐसा नहीं, बरन् अधिक ही हैं। क्योंकि कन्नड़में कुल संस्कृत धातुएँ ले सकते हैं। दोनों मिलकर कन्नड़ में कोई कम ताकत नहीं रखते। उसी प्रकार हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं की स्थिति है।

दुनिया इंग्लिश से भी बड़ी है

कुछ लोगों को यह भास होता है कि काम-कारोबार चलाने के लिए हमारी भाषा समर्थ नहीं है। लेकिन यह भ्रम है। यह मैं मानता हूँ कि विज्ञान प्रकाशित करने के लिए अपनी भाषा असमर्थ है परन्तु उसमें बड़ी बात क्या है? नये शब्द बनाने पड़ेंगे। पश्चिम की भाषा के शब्द लेने होंगे। क्योंकि हमारे लिए वह विषय ही नया है। परन्तु काम-कारोबार चलाने के लिए अगर अपनी भाषा समर्थ नहीं है तो अंग्रेजों का 'भारत छोड़ो' क्यों कहा? उनको रखना चाहिए था। अब भी आप बुला सकते हैं। यह भ्रम है कि मामूली कारोबार करने के लिए अपनी भाषा में ताकत नहीं है। क्या काम है? यही कि लोगों को अच्छी तरह से लाभ पैसा मिले। इन्तजाम करें। हमारे काम हों व्यापार बढ़े, खेती बढ़े। क्या ये सब

रूस में जाकर आपको साम्यवादी ज्ञान हासिल करना है और उनसे प्रेम-संबंध रखना है तो आपका रशियन से शादी कर लेना जरूरी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजी एकदम से हटायी जाय। वह रहे। धीरे-धीरे हटे, पर उसे यहाँ से हटना ही होगा। उसके बिना हिंदुस्तान का दुनिया में जो मिशन है वह पूरा नहीं होगा।

भाषाओं के आधार पर सांस्कृतिक महत्ता

प्रत्येक देश की संस्कृति का एक मिशन होता है। हम अमेरिका का रूस का या चीन का अनुकरण करें, यह हमारा मिशन नहीं है। हमारे देश का अपना मिशन है। भारत जैसा देश इस दुनिया में कोई नहीं है। यह अभिमान से नहीं कह रहा हूँ। यह वस्तुस्थिति है। कोई ऐसा देश आप बताइये कि जिसमें चौदह पंद्रह इतनी समर्थ भाषाएँ चलती हों। भारत की प्रत्येक भाषा विकसित है। तमिल भाषा में २ हजार वर्षों पूर्व का साहित्य है और कन्नड़ में भी ११ सौ साल पहले का साहित्य है। अनेक विकसित भाषाओं को एक धागे में रखने का प्रयोग दुनिया में सिर्फ भारत ने किया है। इस दृष्टि से देखा जाय तो भारत पोलिटिकली एडवान्स्ड है। इसलिए उसका अपना एक मिशन है। ऐसा हिंदुस्तान परायी भाषा से शादी करेगा तो वह अपना मिशन भूलेगा, दुनिया में वह उज्ज्वल देश नहीं रह सकेगा।

कुमठा (मैसूर राज्य)
१७-९-५८

महापुरुषों की पुण्य प्रेरणा : २९

हमारे देश के एक बड़े—बुजुर्ग नेता मौलाना आजाद ने अपना शरीर छोड़ दिया। वे भारत की पचास साल निरंतर सेवा करके चले गये। गांधीजी की कीमिया थी कि उन्होंने बड़े बड़े मनुष्य निर्माण किये। मौलाना आजाद उन्हींमें से एक थे। वे ज्ञाननिष्ठ पुरुष भी थे। वे गांधीजी के आंदोलन में

कूद पड़े और अपना सब कुछ उन्होंने उसमें डाला। पुराने लोग जा रहे हैं उनकी जगह लेनेवाले कहाँ से मिलेंगे? यह चिंता तो भगवान् को करनी है। एक महान् व्यक्ति गया और उसके बाद फौरन दूसरा महान् व्यक्ति भगवान् दे यह हो नहीं सकता। ईश्वर जभी चाहता है तो वह वैसे भी करता है। लोकमान्य तिलक के बाद महात्मा गांधी खड़े हुए। यह सब उसकी मर्जी है। अपनी दृष्टि से हम यह नहीं कह सकते कि किसी महापुरुष का स्थान कोई ले। हम इतना ही कर सकते हैं कि जिस दिशा में वे गये, उस दिशा में जायें।

आज़ाद सचमुच आज़ाद

आज़ाद के विचार सचमुच आज़ाद थे। उनके विचार में किसी प्रकार की संकुचितता को स्थान नहीं था। वे किसी भाषा का आग्रह, धर्म का आग्रह, पंथ का आग्रह या प्रांत का आग्रह नहीं रखते थे। वास्तव में और पूरे अर्थ में वे भारतीय थे। वैसे जन्म से वे अरब थे और अरबी भाषा ही उनकी मातृभाषा थी लेकिन उन्होंने भारत को अपना देश माना। वे हर भारतीय के साथ हृदय से एकरूप रहे। जो भी उनके पास पहुँचे उन्होंने महसूस किया कि उनका दिल संकुचितता से अलग है। कुरान पर उन्होंने बहुत बड़ी टीका लिखी जो पूरी नहीं हो सकी। लेकिन जितनी हुई उसे देखने से मालूम होता है कि उनके विचार कितने समर्थ थे। संप्रदाय-बुद्धिरहित व्यापक बुद्धि से उन्होंने कुरान का भाष्य किया।

जीवन-दर्शन

मौलाना आज़ाद उर्दू के बड़े अच्छे लेखक थे, साहित्यिक थे। अपनी सारी साहित्य शक्ति उन्होंने देश की सेवा में लगायी। यह अखंड सेवा का बोध आज़ाद के जीवन से हमें मिलता है। उनके जैसे महापुरुष किसी भी देश में इने गिने होते हैं। उनकी संख्या बहुत नहीं होती। परंतु ऐसों के स्मरण से दूसरे लोग तैयार होते हैं। मौलाना के लेखों में प्रेरणा पाये हुए कई व्यक्तियों के दर्शन हमें हुए हैं। मैं थोड़ी सी बात नहीं कह रहा हूँ। कई बड़े मनुष्यों ने हमसे यह बात कही है कि उन्हें आज़ाद के लेखों में प्रेरणा मिली है। उनकी लेखनी में एक अर्थ व

भारत में पर्यटक भारतीय जैसा व्यवहार करें

यहाँ पर हमने देखा कि जो पर्यटक आते हैं, उनकी सेवा के लिए डब्बों में भरकर 'बीफ' याने गोमांस और उसमें कुछ और डालकर बनायी हुई चीज रखी हुई है। ऐसे स्थानों पर 'बीफ' रखना और भोग विलास करना भारतीय संस्कृति नहीं है। यह देखकर हमें बड़ा दुःख हुआ। अंग्रेजी में कहावत है कि 'जब आप रोम में जाते हैं, तो आपको रोमन लोगों के जैसा व्यवहार करना चाहिए। उसी तरह अगर विदेशी पर्यटक यहाँ हिन्दुस्तान में आते हैं, तो उन्हें कहना चाहिए कि आप लोगों को भारतीय की तरह व्यवहार करना चाहिए। यह हम उन्हें सहज समझा सकते हैं। वे इतने मूर्ख नहीं हैं कि यहाँ आकर 'बीफ' माँगें। ऐसे पवित्र स्थान में गोमांस रखना मद्य मांस और भोग विलास करना हिन्दुस्तान की सभ्यता नहीं है। यहाँ की प्रजा को इसका सख्त निषेध करना चाहिए। प्रजा की आत्मा को क्षोभ होना चाहिए। क्षोभ याने जिसे अंग्रेजी में 'राइचस इंडिग्नेशन' पुण्य प्रकोप कहते हैं, वह। हमारे देश में परदेश के लोग आयें और उनसे ऐसा व्यवहार हम करें, यह हमें शोभा नहीं देता।

यह स्थान भारत में अद्वितीय है, वैसे ही दूसरे भी अद्वितीय स्थान हैं। उन्हीं जगह भारतीयों ने पावित्र्य की ही कल्पना की है। इसीलिए कहीं मंदिर, कहीं मस्जिद कहीं आश्रम बनाये हैं। दूर दूर जंगलों में भी जहाँ ऐसे सुन्दर स्थान हैं, वहाँ त्याग और तपस्या का स्थान बनाया है। परन्तु इस नयी सभ्यता के कारण आज ऐसे स्थान भोगस्थान बने हैं। मसूरी में, उटकमंड में हमने देखा वहाँ भी भोग-साधन बनाये हैं। इस तरह जो स्थान पवित्र होने चाहिए, वे इन लोगों ने भोग साधन बनाये हैं, जो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अनुचित है।

जोग (कारवार)

सात साल हुए, एक बहुत बड़ा आंदोलन इस देश में चला। इस आंदोलन ने दुनिया के दूसरे देशों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। विदेशों से लोग आते हैं, आंदोलन में शामिल होते हैं हमारी यात्रा में रहते हैं और अपने देश में जाकर लेख लिखते हैं। अभी मैक्सिको से एक पत्र आया है। वहाँ एक भाई देहातों में काम करते हैं। उन्होंने भूदान-ग्रामदान के बारे में पढ़ा सुना और अपने देश की समस्या मेरे सामने रखते हुए लिखा है कि भूदान और ग्रामदान दुनिया में सबसे बड़ी क्रांतिकारी चीज हो रही है। कहाँ मैक्सिको और कहाँ हिंदुस्तान! वहाँ के मनुष्यों को जो वहाँ सेवा में लगे हैं, इस आंदोलन का आकर्षण कैसे मालूम होता है! इससे भूमि समस्या हल होगी तो हिंदुस्तान की होगी और उत्पादन बढ़ेगा तो हिंदुस्तान का बढ़ेगा तब मैक्सिको के मनुष्य को क्या प्रेरणा मिलती है!

मानवता बढ़ानेवाला तरीका

भूदान-आन्दोलन से सिर्फ एक भूमि-समस्या हल हो रही है, ऐसा नहीं है। बल्कि आज दुनिया के सामने जो बहुत बड़ा संकट उपस्थित है उसका हल इसमें है। दुनिया के मसले अशांति पैदा कर रहे हैं। शांतिमय तरीके से उनका हल निकलता है, तो दुनिया को राहत मिलेगी। मान लीजिये, सरकार ने यहाँ कमाई के कानून बनाये होते और दबाव से जमीन का बँटवारा कर लिया होता तो हिंदुस्तान के कुछ लोगों को सुख मिलता और कुछ को दुःख। उससे कुछ अच्छे परिणाम भी आते। किन्तु दुनिया को इसमें विशेष रुचि नहीं रहती। हर देश की सरकारें इसी तरह करती हैं। परंतु प्रेम, परस्पर सहयोग और शांति के तरीके से मसला हल किया जा रहा है और लोग उसे स्वीकार कर रहे हैं। इस कारण दुनिया में एक आशा निर्माण हुई है। अपना यह जो तरीका है वह

हो तो वह धर्मनिष्ठ होता है। पहले चोरों के हाथ काटते थे। आज हाथ काटना जंगलीपन माना जाता है। इस तरह आज का समाज काफी आगे बढ़ गया है।

जमाने की माँग

आज दुनिया के सामने जो समस्या खड़ी है, उसके लिए बहुत जरूरी है कि मानव-स्वभाव बदले और दुनिया के सबके प्रेम से एक हों। अन्यथा दुनिया का नाश हो जायगा।

भूदान का व्यापक अर्थ

भूदान, ग्रामदान हिन्दुस्तान तक ही सीमित नहीं है। यह छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े बाँटने का काम नहीं है। हमने बहुत दफा कहा है कि आस्ट्रेलिया की जमीन पर जापान का हक है। आस्ट्रेलिया में जमीन ज्यादा और लोकसंख्या कम है। जापान में इसके उलटा है। जमीन का मालिक परमेश्वर है और कोई जमीन का मालिक नहीं बन सकता। आज की ये राष्ट्रों की सीमाएँ टूटनेवाली हैं और टूट भी रही हैं। सारी दुनिया एक होनेवाली है। वह एक हुए बगैर नहीं रहेगी। केरल में एक चौरस मील में १५ लोग रहते हैं। कर्नाटक में जो औसत है, उससे पाँचगुना अधिक लोक-संख्या वहाँ एक मील में है। वहाँ के लोगों को कर्नाटक में आना हो तो क्या आप रोकेंगे? उन्हें प्रेम से जगह देनी होगी। यह समस्या सिर्फ हिन्दुस्तान की नहीं दुनिया की है। जिस किसी देश में जगह हो वहाँ जाने का अधिकार जिस देश में कम जमीन हो वहाँ के लोगों को है। यह भूदान का अन्तर्भूत अर्थ है। जागतिक परिस्थिति में आज भूदान का यही संदेश है।

जमाने ने कम्युनिस्टों को भी बदल दिया

कम्युनिज्म क्या है? कितना उदार विचार है। यह अलग बात है कि कम्युनिस्ट उसे किस ढंग से फैलाना चाहते हैं। वे पहले कहते थे कि जब तक सारी दुनिया में कम्युनिज्म नहीं फैलता तब तक कम्युनिज्म खतरे में है। आज क्या कहते हैं? "अपनी नैतिक शक्ति से ही वह फैलेगा। फिर हर देश का पैटर्न

जो भी हो रखना चाहिए। अब वह अस्तित्व की बात करता है। हिंदुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी भी कहती है कि हमारा उद्देश्य हिंदुस्तान में शांति के मार्ग से कम्युनिज्म की स्थापना करना है। क्या कभी किसीने यह सपना भी देखा था कि जिन्होंने मार्क्स का वैज्ञानिक ग्रन्थ पढ़ा वे शांति की भाषा बोलेंगे! जमाना बदल रहा है, परिस्थिति बदल रही है, वे भी बदल रहे हैं। जो चीज प्राचीन काल में नहीं हो पायी वह आज हो रही है। मानव आगे बढ़ रहा है।

विकल्प ही मानव की शक्ति

मनुष्य पशु के समान तो है नहीं। पशु के विकास की सीमा है। शास्त्रकारों ने कहा है पशु है भोगयोनि और मनुष्य है कर्मयोनि। मनुष्य नया कर्म कर सकता है। नया पुरुषार्थ कर सकता है। ऊँची उड़ान भर सकता है। नीचे भी गिर सकता है। पशु गिर नहीं सकता और न चढ़ ही सकता है। शेर चाहे तो भी शाकाहारी नहीं बन सकता। गाय के शरीर की भी मर्यादा है। वह मांस नहीं, घास ही खा सकती है। पशु के शरीर की तो यह मर्यादा है, पर मानव मांसाहारी भी बन सकता है और शाकाहारी भी। मानव के सामने विकल्प है। पशु के सामने विकल्प नहीं। जिनके सामने विकल्प है, वे कर्मवान् हैं। आप पाप कर सकते हैं और पुण्य भी। यह विकल्प ही आपकी शक्ति है। पशु शरीर के बंधन में है, तो हम शरीर बंधन से बाहर हैं। हम जीवन मुक्ति पा सकते हैं। मानव शरीर में मुक्ति पानेवाले मनुष्य देखे गये हैं।

युग को पहचानने में ही खैर

आप इस भ्रम में कभी मत रहिये कि डेकन और मिल ने जो लिखा है, वह मानव का स्वभाव है। दिन-ब-दिन उसका विकास हो रहा है। यह काल्पनिक बात नहीं है। देश देश की सीमा टूट रही है। बुद्धि और हृदय व्यापक हो रहा है। इसलिए आप जब तक यह न समझेंगे कि आपका युग कुछ बुलाता है, तब तक मार और हार खायेंगे। यह बात बड़े-बड़े लोगों के ध्यान में भी नहीं आती। नारायण का अवतार परशुराम था और उसी नारायण का अवतार रामचन्द्र। परशुराम राम को पहचान नहीं सका, क्योंकि

नहीं कर सका। आखिर जब उसने राम का पराक्रम देखा तब पहचाना। पुरानी पीढ़ी ऐसा ही करती है। बजाय उन्हें धक्के लगाकर उत्तेजन देते हैं।

'ट्रस्टीशिप' का नया अर्थ

गांधीजी के कुछ अनुयायी बाबा पर भी आक्षेप करते हैं। वे कहते हैं कि गांधीजी मालकियत के खिलाफ नहीं थे वे ट्रस्टीशिप को मानते थे। परन्तु यह शख्स उनके विरुद्ध जा रहा है। हम भी गांधीजी के साथ रहे हैं और वे भी। उन्हें लगता है कि गांधीजी का विचार यही है कि मालकियत कायम रखी जाय और नौकरों पर प्रेम किया जाय। मैंने ट्रस्टीशिप का विवरण कर दिया है। ट्रस्टीशिप का क्या अर्थ है? बाप बेटे के लिए ट्रस्टी है। बाप का क्या कर्तव्य है? वे दो हैं: (१) अपने ऊपर जितना प्यार करता है, उतना ही नहीं, उससे भी ज्यादा प्यार लड़के पर करे और (२) जल्द-से जल्द लड़के को लायक बनाकर उसके हाथ में काम सौंपे। मैं कहता हूँ, यही करो। तुम जमीन के मालिक और वह नौकर, यह भेद मत रखो। तुम अपने ऊपर जितना प्रेम करते हो, उससे ज्यादा प्रेम नौकरों पर करो और जल्द से जल्द उनके हाथों में कारोबार सौंप दो। यह सारा समझाना पड़ता है और वे समझते हैं। नये मूल्य आ रहे हैं। इस तरह मूल अर्थ में फरक करके ही उसे लेना होगा।

नित्य-नूतन ही टिक सकता है

यास्काचार्य ने सनातन शब्द की व्याख्या की है: 'सनातनो धर्मः। सनातनो नित्यनूतनः'—जो नित्य नया रूप ले, वही सनातन है। जो पुराना रूप पकड़े रखेगा वह कभी न टिकेगा। सनातन कायम टिकनेवाला यानी प्रतिक्षण बदलनेवाला है। उसमें नित्य-नूतन की शक्ति है इसीसे वह टिक सकता है। मानव में नित्य-नूतनता है, इसीलिए मानव में विकास होता है। नैतिक मूल्य बदल रहे हैं। इसलिए ऐसी गलतफहमी में मत रहिये कि ग्रामदान मानव स्वभाव के विरुद्ध है। मानव स्वभाव के लिए अत्यावश्यक और विज्ञान के लिए अनिवार्य है।

जोग (कारवार)
२१.१.५८

प्राचीन काल से हिंदुस्तान के वैभव के विषय में यूरोप के लोग सुनते आते थे। यहां के व्यापारी बहुत दूर दूर जाकर हाथों से पैदा की हुई चीजें यूरोप के बाजारों में बेचते थे। इससे हिन्दुस्तान की कीर्ति विदेशों में फैली। यह देश कितना समृद्ध और कितना वैभवशाली है, यह सुनकर लोग प्रेम से इसे देखने के लिए आते थे। चीन से ह्यू-एनत्सिंग आये, और भी कई लोग आये और वे लोग यहाँ की बातें देखकर अपने देश लौटे।

व्यापारी से राज्यकर्ता कैसे बने ?

पाँच सौ साल पहले यूरोप के लोगों ने हिंदुस्तान के साथ व्यापार-व्यवहार करना आरम्भ किया। वे यहां की वस्तु वहाँ ले जाते और वहाँ की वस्तु यहाँ लाने लगे, इसी सिलसिले में यहाँ डच बन्धु, फ्रेंच बन्धु, अंग्रेज बन्धु भी आये। व्यापार के सिवा उनकी ओर कोई मंशा नहीं थी। वे कारोबार करने लगे, तो उस समय यहां का व्यापारी वर्ग दूसरों का चूसनेवाला वर्ग था। जाति भेद बहुत था। छोटे छोटे मजदूर एवं किसान अत्यन्त हीन माने जाते थे। कुछ उच्च कहलाते, जो 'ब्राह्मण' कहलाते थे, धर्माध्यापन के सिवा और कोई काम नहीं करते थे। जो हाथ से काम करते थे उन्हें वे हीन दृष्टि से देखते थे। व्यापारी वर्ग भी उन्हें हीन समझता और इसका लाभ उठाता था। कुछ राजा थे, वे आपस में लड़ते ही रहते थे। इस तरह से ब्राह्मण, व्यापारी और राजा लोग आम जनता से अलग हो गये। आम जनता एक प्रकार से अछूत हो गयी थी। उनके हाथ का खाना कोई पसंद नहीं करता था। उन्हें मंदिर में नहीं आने देते थे। कुछ लोगों को छूना भी पाप समझते थे। इसलिए धीरे धीरे विदेशी लोगों ने व्यापार के लिए यहां का संगठन शुरू किया। उसमें देखते देखते भारत का राज्य इनके हाथ में आ गया। इन्होंने कल्पना में कल्पना भी न की होगी कि भारत का राज्य अपने हाथ में आयेगा।

अंग्रेजों का 'सर्वे' शोषण के लिए

अंग्रेजों ने सारे हिंदुस्तान का सर्वे किया। उन्होंने गाँव गाँव का इस दृष्टि से निरीक्षण किया कि हम किस तरह यहाँ के कच्चे माल को 'एक्सप्लायट' कर सकते हैं और इंग्लैण्ड का व्यापार बढ़ा सकते हैं। परिणामस्वरूप हिंदुस्तान का शोषण शुरू हुआ। शुरुआत में अंग्रेजों का राज्य जब यहाँ आया, तब लोगों ने उसे वरदान ही समझा। बम्बई प्रान्त में एल्फिन्स्टन साहब प्रथम गवर्नर हुए। अच्छा राज्य, नौकरों को तकलीफ नहीं। कर्मचारी ठीक ११ बजे दफ्तर जाते और ५ बजे छूट जाते। एक मिनट भी ज्यादा नहीं रखते थे। हफ्ते में एक दिन छुट्टी भी देते थे। इस तरह नौकर वर्ग बहुत संतुष्ट था। अंग्रेजों का राज्य 'कानून और व्यवस्था' पर आधारित माना जाता था। फलतः फिर हिंदुस्तान में बहुत से कायदे-कानून आ गये। देखते-देखते कायदे-कानूनों का जंगल बन गया। जगह-जगह कानून और जगह जगह कायदा। परिणामस्वरूप देश का शोषण जोरों से चल पड़ा।

अंग्रेजों की भारत-भिन्नत्व की समझ

धीरे धीरे लोगों के दुःख सामने आने लगे। तब कांग्रेस बनी। वह लोगों के दुःख अंग्रेजों के सामने रखने का काम करने लगी। अंग्रेज बहुत उदार हैं। वे लोगों के दुःख समझें तो जरूर दूर करेंगे। वे नहीं जानते इसलिए दुःख होते हैं ऐसा हमारे शिक्षित लोग समझते थे। इस ख्याल से लोगों के दुःख अंग्रेजों के सामने रखकर दूर करने की कोशिश बहुत दिनों तक चली। कांग्रेस में उस समय कई प्रांतों के लोग थे, किन्तु बंगाल और बंबईवालों की अधिकता थी। उनके शिरोमणि थे दादाभाई नौरोजी। अगर मेरी गलती न हो, तो दादाभाई ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य भी थे और हिंदुस्तान का दुःख उन लोगों के सामने रखते थे।

एक जमाने में हिंदुस्तान कितना श्रीमान् था और अब अंग्रेजों के शासन में कितना गरीब हुआ, इस पर एक किताब भी लिख डाली। उसका नाम बहुत ही मार्मिक है—'पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल आफ इण्डिया'। माने जो राज यहाँ

है, वह स्त्रियों के लायक नहीं है। इससे उस समय स्त्रियों शब्द के लिए कितना आदर था वह दीखता है। उन्होंने स्त्रियों शब्द बहुत आदरणीय माना। इस प्रकार बहुत अनुनयपूर्वक और नम्रता से वे स्त्रियों के पास अपनी माँगें करते थे। बिलकुल बुढ़ापे तक उन्होंने यह काम किया।

स्वराज्य-प्राप्ति का लक्ष्य और प्रयत्न

सन् १८१८ में अंग्रेजों के हाथ में हिंदुस्तान आया। वैसे उससे पहले बंगाल वगैरह उनके हाथ में था। परन्तु उनके मुख्य दुश्मन थे पेशवा, हैदर और टीपू। सन् १८१८ में टीपू सुल्तान खतम हो गया और साथ ही पेशवा भी। उसके साथ साथ बाद सन् १८२५ में दादाभाई नौरोजी का जन्म हुआ। सन् १९०६ में उनकी ८१ साल की उम्र हुई। तब तक उन्होंने अंग्रेजों के सामने हिंदुस्तान का दुःख रखने का यह धंधा किया। आखिर उनका भ्रम दूर हुआ और वे बोले कि हमारे दुःख स्वराज्य प्राप्ति के बिना नहीं मिट सकते। इस तरह ५०-६० साल श्रद्धापूर्वक काम करने के बाद उन्होंने हिंदुस्तान को 'स्वराज्य' शब्द का मंत्र दिया। उसे लोकमान्य तिलक ने उठाया। अरविन्द ने उठाया और बाद में महात्मा गांधी ने उठाया। उसके बाद स्वराज्य की एक बहुत बड़ी लड़ाई चली।

पारतंत्र्य का अभिशाप ग्राम-परावलंबन

अंग्रेजों की व्यवस्था के कारण यहाँ का ग्राम-जीवन अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो गया। जमीन की मालिकियत चन्द लोगों के हाथ में आ गयी। सारे धंधे टूट गये, सिवा खेती के दूसरा कोई चारा नहीं रहा। मौके पर अगर पैसों की जरूरत पड़ी तो कर्ज लेना शुरू हुआ। और फिर वह कर्ज चुकाना मुश्किल हो गया तो उसके बदले में जमीन दे दी। इस तरह जमीन का हस्तान्तरण शुरू हुआ। उत्तम जमीन साहूकारों और व्यापारियों के पास चली गयी। गाँव के बड़े लोगों को भी पैसा चाहिए। वह कहाँ से हासिल हो? इसके लिए उत्तम-से उत्तम जमीन में तिजारती फसलें बोयी गयीं। चरोतर की अच्छी जमीन में तंबाकू, आन्ध्र में कृष्णा गोदावरी डेल्टा की बहुत अच्छी जमीन में तंबाकू, कृष्णा नदी गुन्टूर जिले की जमीन में तंबाकू। गया का प्रदेश, मुजफ्फरपुर जिला, बहुत

अच्छी जमीन है, वहाँ भी तमाकू। गुजरात-जैसा जिला, बहुत अच्छी जमीन है, पर वहाँ भी तंबाकू।

गाँवों को पैसा तो चाहिए। धंधा कोई रहा नहीं। ग्रामोद्योग की जो चीजें बनती थीं, उन्हें भी खरीदना पड़ता। गाँव-गाँव में बुनकर और कातनेवाले रहते थे उनका उपयोग होता था कपड़े के लिए और बचे तो पैसे के लिए। इस प्रकार कपड़े से दो काम होते थे। एक गाँव का वस्त्र-स्वावलंबन और दूसरा कुछ पैसा हासिल करना। अब तो दोनों चीजें गयीं। कपड़ा आदि सभी चीजें खरीदने के लिए पैसे की जरूरत पड़ी। गाँव में तिलहन बने और शहरों में तेल बने, गाँव में सन बने और शहर में रस्सी, गाँव में गन्ना बने और शहर में शक्कर, गाँव में कपास हो और शहर की मिल में कपड़ा बने। कच्चा माल गाँव में और पक्का शहर में। इससे परिपूर्ण पराधीनता आ गयी।

सारे गाँव के लिए क्या होना चाहिए, यह कौन सोचे। गाँव की चीजें पहले गाँव के लोगों को मिलनी चाहिए, उसके बाद ही बाहर भेजनी चाहिए। किन्तु वहाँ तो ग्राम दृष्टि नहीं रही अपने घर की ही दृष्टि रही। जिससे ज्यादा पैसा मिले वही बोया गया। इस तरह ग्रामोद्योग टूटने और जमीन चंद लोगों के हाथ में आने से ग्राम अस्त-व्यस्त हो गया।

'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' सरकारी सत्ता जमाने के लिए नहीं

अब जब हमारे हाथ में स्वराज्य आ गया तो इस सारी हालत को सुधारने के लिए यह कम्युनिटी प्रोजेक्ट बनाया गया है। यह लंबी कहानी इसलिए सुना रहा हूँ कि आप लोगों का जन्म किस मुहूर्त में हुआ किस नक्षत्र में हुआ, यह आप जानें। आपकी जन्मकुंडली आपके सामने है। आपका कार्य क्या है, यह बता रहा हूँ। कोई केंद्रीय सरकार है और उसकी सत्ता जमाना आपका काम नहीं, यह आपको अच्छी तरह समझना चाहिए। आपको सरकार से जो पैसा मिलता है, वह इसीलिए कि सरकार की शक्ति कम-से-कम रहने दें और गाँव-गाँव की शक्ति बढ़े, गाँव गाँव में स्वराज्य हो। बेंगलोर, दिल्ली बंबई या कलकत्तावालों की शक्ति बढ़ाने के लिए आप नहीं रखे गये हैं। मैं अपनी बात में ही कह रहा हूँ, ऐसा नहीं है। मैं कहना चाहता हूँ कि आपके प्रधानमंत्री की भी यही मंशा है।

है, पर स्त्रियों के व्यापक नहीं है। इससे उस समय स्त्रियाँ शब्द के लिए कितना आदर था यह दीखता है। उन्होंने स्त्रियाँ शब्द बहुत आदरणीय माना। इस प्रकार बहुत अनुनयपूर्वक और नम्रता से वे स्त्रियों के पास अपनी माँगें रखते थे। बिल्कुल बुढ़ापे तक उन्होंने यह काम किया।

स्वराज्य-प्राप्ति का स्वप्न और प्रयत्न

सन् १८१८ में अंग्रेजों के हाथ में हिंदुस्तान आया। वैसे उससे पहले बंगाल वगैरह उनके हाथ में था। परंतु उनके मुख्य दुश्मन थे पेशवा, हैदर और टीपू। सन् १८१८ में टीपू सुल्तान खतम हो गया और साथ ही पेशवाई भी। उसके सात साल बाद सन् १८२५ में दादाभाई नौरोजी का जन्म हुआ। सन् १९०६ में उनकी ८१ साल की उम्र हुई। तब तक उन्होंने अंग्रेजों के सामने हिंदुस्तान का दुःख रखने का यत्न किया। आखिर उनका भ्रम दूर हुआ और वे बोले कि हमारे दुःख स्वराज्य प्राप्ति के बिना नहीं मिट सकते। इस तरह ५०-६० साल श्रद्धापूर्वक श्रम करने के बाद उन्होंने हिंदुस्तान को 'स्वराज्य' शब्द का मंत्र दिया। उसे लोकमान्य तिलक ने उठाया। अरविन्द ने उठाया और बाद में महात्मा गांधी ने उठाया। उसके बाद स्वराज्य की एक बहुत बड़ी लड़ाई चली।

पारतंत्र्य का अभिशाप ग्राम-परावलंबन

अंग्रेजों की व्यवस्था के कारण यहाँ का ग्राम-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। जमीन की मालकियत चन्द लोगों के हाथ में आ गयी। सारे धंधे टूट गये, सिवा खेती के दूसरा कोई धंधा नहीं रहा। मौके पर अगर पैसे की जरूरत पड़ी तो कर्ज लेना शुरू हुआ। और फिर वह कर्ज चुकाना मुश्किल हो गया तो उसके बदले में जमीन दे दी। इस तरह जमीन का हस्तान्तरण शुरू हुआ। फलतः जमीन साहूकारों और व्यापारियों के पास चली गयी। गाँव के बड़े लोगों को भी पैसा चाहिए। वह कहाँ से हासिल हो? इसके लिए उत्तम से उत्तम जमीन में तिजारती फसलें बोयी गयीं। चरोतर की अच्छी जमीन में तंबाकू, आन्ध्र में कृष्णा गोदावरी डेल्टा की बहुत अच्छी जमीन में तंबाकू, कृष्णा नदी, गुंटूर जिला की जमीन में तंबाकू। गंगा का प्रदेश, मुजफ्फरपुर जिला, बहुत

अच्छी जमीन है, वहाँ भी तंबाकू। गुजरात-जैसा जिला, बहुत अच्छी जमीन है, पर वहाँ भी तंबाकू।

गाँवों को पैसा तो चाहिए। धंधा कोई रहा नहीं। ग्रामोद्योग की जो चीजें बनती थीं, उन्हें भी खरीदना पड़ता। गाँव-गाँव में बुनकर और धुननेवाले रहते थे, उनका उपयोग होता था कपड़े के लिए और बचे तो पैसे के लिए। इस प्रकार कपड़े से दो काम होते थे। एक गाँव का वस्त्र-स्वावलंबन और दूसरा कुछ पैसा हासिल करना। अब तो दोनों चीजें गयीं। कपड़ा आदि सभी चीजें खरीदने के लिए पैसे की जरूरत पड़ी। गाँव में तिलहन बने और शहरों में तेल बने, गाँव में सन बने और शहर में रस्सी, गाँव में गन्ना बने और शहर में शक्कर, गाँव में कपास हो और शहर की मिल में कपड़ा बने। कच्चा माल गाँव में और पक्का शहर में। इससे परिपूर्ण पराधीनता आ गयी।

सारे गाँव के लिए क्या होना चाहिए, यह कौन सोचे। गाँव की चीजें पहले गाँव के लोगों को मिलनी चाहिए, उसके बाद ही बाहर भेजनी चाहिए। किन्तु यहाँ तो ग्राम दृष्टि नहीं रही, अपने घर की ही दृष्टि रही। जिससे ज्यादा पैसा मिले, वही बोया गया। इस तरह ग्रामोद्योग टूटने और जमीन चन्द लोगों के हाथ में आने से ग्राम अस्त-व्यस्त हो गया।

'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' सरकारी सत्ता जमाने के लिए नहीं

अब जब हमारे हाथ में स्वराज्य आ गया, तो इस सारी हालत को सुधारने के लिए यह कम्युनिटी प्रोजेक्ट बनाया गया है। यह लंबी कहानी इसलिए सुना रहा हूँ कि आप लोगों का जन्म किस युग में हुआ, किस नक्षत्र में हुआ, यह आप जानें। आपकी जन्मकुंडली आपके सामने है। आपका कार्य क्या है, यह बता रहा हूँ। कोई केन्द्रीय सरकार है और उसकी सत्ता जमाना आपका काम नहीं, यह आपको अच्छी भाँति समझना चाहिए। आपको सरकार से जो पैसा मिलता है, वह इसीलिए कि सरकार की शक्ति कम से-कम रहने दें और गाँव-गाँव की शक्ति बढ़े, गाँव-गाँव में स्वराज्य हो। बेंगलोर, दिल्ली, बम्बई या कलकत्तावालों की शक्ति बढ़ाने के लिए आप नहीं रखे गये हैं। यह बात मैं ही कह रहा हूँ, ऐसा नहीं है। मैं कहना चाहता हूँ कि आपके प्रधानमंत्री की भी यही मंशा है।

उन्होंने अपने व्याख्यान में गाँव गाँव के लोगों को समझाने का आशय स्पष्ट किया है कि गाव के लोगों को केंद्रीय सरकार, प्रादेशिक सरकार, कम्युनिटी प्रोजेक्ट कल्याणकारी राज्य आदि किसी पर भी निर्भर नहीं रहना चाहिए, नहीं तो हिंदुस्तान की अन्न वस्त्र की समस्या हल नहीं होगी।

आपका काम तभी सफल होगा जब आपकी जरूरत खतम हो जायगी। लोगों की आवश्यकता मिटाना ही आप लोगों का कार्य है। बाप का क्या काम होता है? बच्चे को अपने पाँवों पर खड़ा करे और सारा कारोबार, जिसे बाप को देखना पड़ता है, उसे सौंप दे।

अभी तक कम्युनिटी प्रोजेक्ट विफल

इतने दिनों तक कम्युनिटी प्रोजेक्ट चला पर इससे क्या परिणाम आया? क्या गाँव गाँव के लोग स्वावलम्बी हो गये? क्या वे अपने गाँव की योजना स्वयं बनाते हैं? सारा ऊपर से उनके सिरों पर लादा जा रहा है। उससे ग्राम का जीवन आत्म निर्भर बनाने में कोई खास मदद नहीं मिलेगी। उससे बड़ी बात यह है कि जो ग्राम के बिल्कुल गिरे हुए लोग हैं, उन्हें मदद नहीं मिल रही है। इस विषय में आपके इस काम के सबसे बड़े मुखिया केंद्रीय सरकार के भी उपाध्यक्ष ने हमारी यह बात मान ली है। वे भी यह मानते हैं। इसलिए अब प्रश्न यह है कि गरीबों को मदद कैसे मिले? इस पर हमने सोचा कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट में गाँव का विकास करना हो और गाँव की ताकत खड़ी करनी हो, तो भूदान आदि भूमि का दान लेना शुरू करें। गरीबों के लिए दान दें। गाँव की जमीन के उन्हें अपने पाँवों पर खड़े होने में मदद दें। लोगों में यह वृत्ति आनी चाहिए कि जब हमारा पड़ोसी दुःखी है तो हमें सुखी रहना उचित नहीं।

ग्रामदान में सरकारी सहयोग

यह एक आरम्भ है। ग्रामीण इसी के आधार पर सारी योजनाएँ करें। ग्रामदान को अपनी अपनी योजनाएँ बनाने में मदद करना और ग्राम जीवन [illegible] उसका खर्च उठाना और उसके बाद आगे बढ़ाना। इस दृष्टि [illegible] में कुछ दोष और अवगुण है सादा और कुछ दूसरे

लोगों ने मिलकर सोचा और निर्णय किया है। सरकार ने इस काम को कबूल किया और कहा है कि ग्रामदानी कार्यकर्ता और सरकारी अधिकारियों में सहयोग हो। दोनों परस्पर प्रेम से काम करें। तदनुसार आप और हम एकत्र हुए हैं।

सरकारी मदद का स्वरूप—ढाढ़स बँधाना

क्या आप ग्रामदान-प्राप्ति के लिए मदद दें? जिनके पीछे कुछ सत्ता खड़ी है, वे ऐसा नहीं कर सकते। जहाँ सत्ता आती है, वहाँ दबाव का संभव होता है। इसलिए आप ग्रामदान प्राप्ति में मदद दें ऐसा हम नहीं चाहते। ग्रामदान प्राप्त करना आपका काम नहीं है लेकिन जहाँ ग्रामदान प्राप्त हुआ वहाँ आपका काम शुरू हो जाता है। यह देखने के लिए नहीं कि वहाँ कितना 'नुकस' रह गया है बल्कि गाँववालों को ढाढ़स बँधाने के लिए, हिम्मत देने के लिए। आज क्या है? किसीने ग्रामदान दिया तो मानो पाप किया ऐसा माना जाता है। बड़े बड़े लोग शहर से आकर गाँववालों को समझाते हैं कि अरे, तुमने यह क्या किया? साहूकार और व्यापारी आकर समझाते हैं। जो लोग हमारा स्वागत करते हैं वे लोग ही जाकर समझाते हैं कि ग्रामदान मत करो। साहूकार कहते हैं : 'दो हमारा पैसा। अब तुम्हारे हाथ में क्या रहा? तुमने ग्रामदान दिया लेकिन कानून का लिखना अभी बाकी है। उसीके आधार पर हमने कर्ज दिया था। ऐसी हालत में कुछ लोग गड़बड़ा भी जाते हैं। अतः वहाँ जाकर आप सिर्फ नुक्स ही देखना चाहें तो वह मिलेगा। परन्तु आपका काम वह देखना ही है। आप लोग जाकर ग्रामदान करनेवालों से कहिये कि "भाइयो, तुमने ग्रामदान देकर कोई गुनाह नहीं किया बल्कि देश का गौरव किया है। जैसे यह हवा पानी सबके लिए है वैसे ही जमीन सम्पत्ति सबकी है। गाँव में जब तक कोई योजना नहीं बन सकती तब तक व्यक्तिगत मालकियत रहेगी। इसलिए आपने यह बड़ा अच्छा काम किया। हम आपकी जितनी मदद आज कर सकते हैं जरूर करेंगे। आपके काम की सरकार में इज्जत है।" जितने ग्रामदान हुए हैं वे कितने कच्चे हैं—यह नहीं देखना है, बल्कि उन्हें पक्का बनाना आपका काम है।

एक सुन्दर दृष्टान्त

कुछ लोग इसे कहते हैं कि सरकार उन पर विशेष प्रेम करेगी, तो फिर उसमें गुण क्या रहा ? ग्रामदान देने से गुण बढ़ाना है या देने की चस्का ? उनका गुणवर्णन करना है और आपका क्या दोषवर्णन ? सरकार ग्रामदान के पीछे नहीं रहेगी तो सरकार का ही दोष वर्णन होगा । उसके गुण-वर्णन की क्या चिन्ता करते हैं ? यह सोचना चाहिए न ? अगर आप उन्हींके गुण बढ़ाना चाहते हैं तो सरकार विरुद्ध जायगी और इस पर भी आप ग्रामदान करेंगे, तो उनका गुण वर्णन होगा । जो विरोध करते हैं और फिर भी ग्रामदान देते हैं, वे बहुत बड़े गुणवान् हैं ।

जहाँ ग्रामदान होता है, वहाँ के काम को प्राथमिकता देनी चाहिए, यह बात सरकार ने मान्य कर ली है । उन पर उपकार करने की भावना से नहीं बल्कि हम पर ही उपकार होता है, ऐसा मानकर हम काम करेंगे । कम्युनिटी प्रोजेक्ट वहीं प्राथमिकता देगा जहाँ ग्रामदान हुआ है । कम्युनिटी प्रोजेक्ट के लिए जो आधार चाहिए, वह ग्रामदानवाले देते रहेंगे । हमें इतना ही देखना है कि सरकारी मदद से वे अनाथ न बन जायें । उनकी शक्ति बढ़े और सरकार की ताकत उनके पीछे है, इतना ही मतलब हो ।

स्वराज्य में राजा और प्रजा एक

हमारे मन में सरकारी अधिकारियों के लिए उतना ही प्रेम है, जितना और किसीके लिए । स्वराज्य में सरकार अलग, अधिकारी अलग प्रजा अलग, ऐसा भेद नहीं होना चाहिए । राम राज्य का वर्णन करते हुए कवि लिखता है, राम राज्य में राजा राम था प्रजा राम थी । सब एक ही थे । इस तरह सब एक ही चीज है । इसीका नाम स्वराज्य है ।

लोकशाही में कुछ लोग चुने जाते हैं । बाद में उनके हाथ में सत्ता आती है । किन्तु जब सत्ता आती है, तो वे किसी एक पक्ष में नहीं रहते । यह उन्हें समझ लेना चाहिए । तब वे सारे राष्ट्र के सेवक बन जाते हैं । जिस बहुमत ने उन्हें चुनकर दिया है, उनकी सेवा तो उन्हें करनी ही है, लेकिन जिस अल्पमत ने

उन्हें नहीं चुना उनकी भी सेवा उन्हें करनी है। चुनने के बाद आप पक्षभेद नहीं कर सकते। सबकी निष्पक्ष भाव से सेवा करनी होगी। इस तरह सरकार, अधिकारी और प्रजा एक हैं।

जोम (कारवार)
२१-९-५८

शहरों में फैक्टरी-दान : ४३ :

शहरों में फैक्टरी दान होना चाहिए। सारे कारखाने समाज के बनने चाहिए। मालिक और मजदूर सहयोग से कारखाना चलायें। दोनों अपनी-अपनी जिम्मेवारी समझें और प्रेम से काम करें। कारखाने के मालिक का कुटुम्ब मजदूरों के साथ काम करे। जो मुनाफा हो, उसका हिस्सा समाज के लिए दिया जाय और बाकी का मालिक मजदूर समानता से बाँट लें। दान की प्रक्रिया भूमिदान से शुरू हुई और ग्रामदान में परिणत हुई। अब वह शहरों को भी लागू होगी। उसके बिना शहरों में शांति नहीं होगी।

शान्ति के दो पंख

शांति के लिए दो बातें जरूरी हैं, उत्पादन बढ़ाना और प्रेम बढ़ाना। सिर्फ उत्पादन बढ़ने से शांति नहीं होगी। जो भी उत्पादन हो वह सबका हो तब प्रेम बढ़ेगा। उत्पादन सबका न होगा तो लोगों को उत्पादन बढ़ाने में रुचि नहीं मालूम होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि उत्पादन और प्रेम साथ-साथ बढ़ाने का तरीका ढूँढ़ा जाय। यही ग्रामदान का तरीका है।

शांति पक्षी पेड़ पर नहीं आपके सिर में है। आपका शरीर माने एक पेड़ ही है। लेकिन 'ऊर्ध्वमूलम् अधः शाखम्' है, माने उसका मूल (दिमाग) ऊपर और शाखायें (हाथ पैर) नीचे हैं। शांति-पक्षी के दो पंख हैं उत्पादन और प्रेम, आर्थिक और पारमार्थिक विज्ञान और आत्मज्ञान।

बनवासी (कारवार)
१७-९-५८

परमेश्वर का और हमारा नाता क्या है?

प्रश्न : मनुष्य का जीवन उसके अधीन हो या दैवाधीन? अगर दैवाधीन है, तो भगवान् कौन है, कहाँ और कैसे है?

उत्तर : यह सवाल हमेशा पूछा जाता है। प्राचीन काल से आज तक बहुत बार पूछा भी जा चुका है। इस समय यहाँ आप बहुत सारे किसान हैं। इसलिए मैं किसान का उदाहरण दूँगा। मनुष्य और परमेश्वर का संबंध उससे मालूम हो जायगा। किसान बैल को चराने के लिए खूँटे में लम्बी रस्सी बाँध कर बैल के गले में डाल देता है और फिर अपने काम के लिए चला जाता है। उसे उसकी देखरेख की आवश्यकता नहीं होती। रस्सी खूँटे में बँधी होने के कारण बैल उससे बाहर नहीं जा सकता। वह जितनी लंबी हो उतनी जगह में वह घूमता है। पूर्व की ओर का चरना खा लेने के बाद वह पश्चिम में चला हो, तो वहाँ जायगा। फिर दक्षिण में या उत्तर में वहाँ जाना हो जायगा। अगर वह चाहे, तो कहीं भी न जाकर बैठा ही रहे। यह सारा स्वतंत्र है। पर रस्सी की लम्बाई के बाहर नहीं जा सकता। परमेश्वर ने ऐसा ही किया है। खूँटे को रस्सी बाँध उसे मनुष्य के गले में बाँध दिया और स्वयं चैन पर सो गया है। उसे अब ज्यादा ध्यान नहीं देना पड़ता। रस्सी बाँध दी है। उसके अन्दर ही अन्दर मनुष्य घूमता है।

रस्सी कितनी लम्बी है यही सवाल है। यह रस्सी बाबा की है या आपकी? बाबा हिंदुस्तान में घूम रहा है। हिंदुस्तान के बाहर नहीं जाना चाहता। प्रतिबन्ध है, ऐसा नहीं। पर जाने का मन नहीं है। इसलिए प्रतिबन्ध होने पर भी आजादी है। हम जेल में थे तब दीवाल के बाहर नहीं जा सकते थे। अन्दर ही अन्दर घूमते थे। लोग याद करते थे कितने दिन रहना होगा। उसी जेल में मक्खियाँ भी थीं। वे दिन नहीं गिनती थीं। वे जेल के बाहर नहीं गयीं जेल में ही पड़ी

थीं। उनके लिए उतना क्षेत्र बस था। उन्हें भी अन्दर बंद रखा था, पर उनको परवाह नहीं थी। चींटियाँ भी थीं। वे भी क्षेत्र के बाहर कभी न जाती थीं। क्षेत्र में हैं यह उन्हें महसूस भी नहीं होता था। लेकिन मनुष्यों को महसूस होता था।

मनुष्य के गले में जो रस्सी बाँधी है वह कितनी है, कितनी है, क्या उसकी कस है? यह सब सोचा गया है। किस पर से? मनुष्य का पूर्वजन्म देखकर, उसकी उस समय की वासना देखकर रस्सी की लंबाई कम होती है। फिर उसकी रस्सी में उसे पूरी आजादी होती है। वह पूरा पुरुषार्थ कर सकता है। इस पर से ध्यान में आयेगा कि मनुष्य दैवाधीन भी है और अपने अधीन भी। उस मर्यादा के अन्दर हम पूरे स्वतंत्र हैं। हम बँधे हैं, तो भी कोई तकलीफ नहीं। हिंदुस्तान के बाहर जाना होगा तो अपनी सरकार और दूसरे देश की सरकार की भी अनुमति लेनी होगी। जब माँगते हैं, तो वह सबको मिलती भी नहीं। तो क्या आप और हम पराधीन हैं?

हमारे पूर्वजन्म की वासना के अनुकूल भगवान् ने लंबी रस्सी बाँधी है। उसमें पुरुषार्थ के लिए पूरा अवकाश है। जिस दिन योग्यता आयेगी उसके बाहर जाने की उस दिन परमेश्वर उसे कम कर देगा लंबी रस्सी बाँध देगा। इसलिए हम परमेश्वर के अधीन भी हैं और स्वाधीन भी। आखिर रस्सी की लंबाई किसके हाथ में है? भगवान् हमें अपनी मर्जी से इच्छा से नहीं रखता। अगर वह ऐसा करता है, तो वह बहुत बड़ा दुश्मन बन जाता है। वह हमें बाँधेगा अपनी इच्छा के अनुसार ही लेकिन हमारे पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही। इसलिए हम अक्षरशः पूरे पूरे आजाद हैं। हमारे स्वातंत्र्य में कोई बाधा नहीं है। जो कुछ मर्यादा है, वह पूर्वजन्म की इच्छा से है। जो हमने चाहा वह हम लिया। अगर हम चाहते कि गधा बनें तो वह हमें गधा बनाता और छोटी रस्सी बाँध देता। अगर चाहते कि घोड़ा बनें तो घोड़ा बनाता और थोड़ी लंबी रस्सी बाँधता। मनुष्य होने की इच्छा हो तो मनुष्य बनाता है और रस्सी कमी कर देता है। देव इन्द्र चन्द्र बनने की इच्छा हो हम वैसा पुरुषार्थ करें ता

कर्मयोग और ध्यानयोग दोनों चाहिए

प्रश्न : प्रार्थना और कर्म, दोनों में जो तन्मयता है, उनमें अन्तर क्या है ? क्या प्रार्थनारहित कर्म जीवन के लिए काफी है ?

उत्तर : अभी मैंने मिसाल दी। 'कर्म' याने भगवान् ने जो रस्सी बाँधी है, उतने क्षेत्र में काम करना। 'प्रार्थना' याने इससे अधिक लम्बी रस्सी चाहिए, ऐसी प्रार्थना करना। हम यहाँ हैं, उससे और आगे बढ़ें। जितनी ताकत है, उतना काम करें, यह कर्मयोग है। प्रार्थना आगे के लिए, भविष्य के लिए है। कर्मयोग याने वर्तमान है। उसका पूरा उपयोग आज हो।

इनमें से कोई एक ही रखा रहेगा तो वह मर्यादित हो जायगा और ज्यादा मौका नहीं मिलेगा। अगर कर्म नहीं किया और सिर्फ प्रार्थना ही की कि लंबी रस्सी चाहिए, तो वह कहेगा : "तुझे जितना दिया है, उसका उपयोग तो तूने नहीं किया। इसलिए केवल प्रार्थना का उपयोग नहीं होगा। अतः दोनों चाहिए, दोनों की तन्मयता चाहिए।

हम ऐसा ही करते हैं चलते हुए। एक कदम, दो कदम, तीन कदम चल, लेकिन और दूर-दूर देखते हैं। चलने में नजदीक और देखने में दूर। प्रार्थना दूर दूर दीखती है और कर्मयोग नजदीक। दोनों करने चाहिए। आसमान देखते हुए न चलेंगे तो रास्ता खोयेंगे। रास्ते पर ध्यान न देंगे, तो सामनेवाले गड्ढे में गिर जायेंगे। इसलिए पाँव से चलना चाहिए और आँखों से देखना। कर्मयोग याने पाँव से चलना और प्रार्थना याने आँखों से दूर दूर देखना। भगवान् ने मनुष्य को दोनों दिये हैं—पाँव भी और आँख भी। कर्मयोग में पाँव रखें ध्यानयोग में आँख। ध्यानयोग में पाँव को न भूलें नहीं तो ठोकर लगेगी। कर्मयोग की आँख को भूलेंगे, तो पेड़ से टकरायेंगे। इसलिए दूर भी देखना और नजदीक भी देखना। नजदीक देखकर चलना कर्मयोग है और दूर देखकर चलना ध्यानयोग याने प्रार्थना है।

'जिओ और जीने दो' या आत्मार्पण ?

प्रश्न : 'जिओ और जीने दो' और 'अपने जीवन को संकट में डाल

नेहरूजी के समाजवाद और सर्वोदय में अन्तर

प्रश्न : श्री नेहरूजी का समाजवादी स्वरूप और आपका ग्रामदानी गाँवों का समाजवाद दोनों में फर्क है या दोनों एक ही हैं?

उत्तर : नेहरूजी का समाजवाद क्या है, यह वे ही जानते हैं। बाबा का समाजवाद क्या है यह बाबा जानता है। 'समाजवाद' एक विलक्षण शब्द है। उसके पचासों अर्थ होते हैं। हिटलर ने जर्मनी में एक 'समाजवाद' चलाया उसे 'राष्ट्रीय समाजवाद' कहते हैं। 'सोशलिज्म' या समाजवाद पश्चिम का शब्द है। उसके अनेक अर्थ होते हैं। इसलिए 'सोशलिज्म' कहने से स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। किन्तु सर्वोदय कहने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

आप पूछ सकते हैं कि फिर वे लोग सर्वोदय शब्द क्यों कबूल नहीं करते? 'समाजवाद' यह अस्पष्ट शब्द क्यों रखते हैं? नेहरूजी ने स्वयं इसका उत्तर दिया है। 'सर्वोदय' बहुत अच्छा शब्द है। लेकिन इतना उत्तम शब्द उठायें और उसके अनुकूल न करें, तो अच्छा नहीं। इसलिए हम अपना छोटा-सा सादा शब्द लेते हैं।

पंडित नेहरू सर्वोदय और ग्रामदान का विचार चाहते हैं। इसीलिए येलवाल में उन्होंने इसे सम्मति दी। फिर भी 'सर्वोदय' का नाम लेने में हिचकते हैं। वे उसे करना चाहते हैं पर नाम लेना नहीं। इसका अर्थ क्या है? वे पत्नी का-सा प्रेम करते हैं और हम माँ का-सा। माँ हमेशा मेरा बाबा मेरा बेटा कहती है। प्रेम भी करती है और सेवा करने की भी कोशिश करती है और पचास दफा नाम भी लेती है। और पत्नी प्रेम करती है सेवा करती है लेकिन नाम नहीं लेती। नेहरूजी की पत्नी-भक्ति है और हमारी मातृ-भक्ति है।

समाजवाद की क्रिया ऊपर से नीचे आने की है और 'सर्वोदय' नीचे से ऊपर जाता है। ग्राम में ग्राम-स्वराज्य होगा। उसमें एक ग्राम-सभा होगी। फिर ऐसे पचास गाँवों की मिलकर एक सभा होगी। ऐसी कुछ सभाएँ मिलकर जिला-सभा होगी। ऐसी अनेक सभाएँ मिलकर प्रान्त-सभा होगी। तात्पर्य यह कि सारी ताकत नीचे रहेगी और ऊपर कम। हम इस तरह निर्माण करना

चाहते हैं। लेकिन उनका क्या है? दिल्ली में एक योजना बनेगी और फिर उसकी धाराएँ बहेंगी। वे क्रमशः नीचे-नीचे के प्रांत, जिला, तालुका, गाँव और गाँवों में छोटे लोग।

इस तरह उनके और हमारे वाद में तीन फरक हुए :

(१) 'समाजवाद' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं होता पर 'सर्वोदय' शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है।

(२) हमारा मातृ-प्रेम है, उनका पत्नी-प्रेम।

(३) उनकी क्रिया ऊपर से नीचे आने की है और हमारी क्रिया नीचे से ऊपर जाने की।

मंचीकेरी
३-२-'५८

सगुण दर्शन

: ४५ :

सर्वोदय-कार्य का व्यापक असर सन् सत्तावन के अन्त तक अवश्य ही होगा ऐसी आशा कुछ लोगों ने की थी। आशा और अपेक्षा में अन्तर होता है। आशा याने मनुष्य की सद्भावना देखकर जो चीज होना आवश्यक है, वह चीज जरूर हो ऐसी कामना करना। अपेक्षा याने प्रत्यक्ष स्थिति का जो रूप है, उसे देखते हुए हिसाब से की आशा की जाय वह है अपेक्षा। कोई बीमार है, उसकी सेवा करनेवाले आशा करते हैं कि वह रोगी एक दिन में अच्छा होगा। एक दिन डॉक्टर ने कह दिया कि इसकी आशा नहीं है। फिर भी सेवा करनेवाले आशा तो रखेंगे ही अपेक्षा नहीं रखेंगे। हिसाब से उसके जीने की अपेक्षा तो नहीं रखते फिर भी आशा रखते हैं, यही दोनों शब्दों में अन्तर है। अपेक्षा हिसाब से होती है और आशा चित्त-शक्ति के भरोसे होती है। चित्त-शक्ति संकल्प-शक्ति होती है, उसके भरोसे आशा होती है। स्थिति का रूप देखकर तदनुसार जो आशा रखी जाती है, उसे अपेक्षा कहते हैं।

सगुण दर्शन हो गया

लोगों की आशा और अपेक्षा के अनुसार सर्वोदय का असर हुआ किन्तु लोगों को दिखा नहीं। हमें वह दिखा। वह सिद्ध करने की बात नहीं है। मैं उसे सिद्ध नहीं करूँगा। मुझे वह जो दिखा वह अगर न दिखा होता, तो मैं दूसरे ढंग से काम में लगता। फिर आज जो भाषा चल रही है, वैसी भाषा न होती। हमने अनुभव किया है कि अव्यक्त में एक असर स्पष्ट रूप से सारे भारतीय समाज पर, लोक मानस पर हुआ है। सबसे पहले असर लोक-मानस पर ही होता है। उसे हम साकार दर्शन नहीं कहेंगे। सगुण दर्शन कहेंगे। पहले निर्गुण निराकार का दर्शन होता है। उसके बाद सगुण निराकार का और उसके बाद सगुण साकार का होता है। निर्गुण निराकार तो परमेश्वर है। उसका एक रूप है, वह सर्वत्र व्याप्त है। उसका अनुभव समाधि में ही हो सकता है। सगुण निराकार में गुण है पर आकार प्रकट नहीं होता। भक्त उसीकी भक्ति करता है फिर सगुण साकार होता है और भक्त उसकी पूजा करता है। उसका अनुसरण होता है। हम कहते हैं हमें सगुण साक्षात्कार हुआ है। साकार बाकी है। उसकी अपेक्षा हमने की भी नहीं। सगुण निराकार का दर्शन होगा यह हमने माना था। स्वराज्य का उच्चारण हुआ तब से ४१ साल के बाद स्वराज्य प्राप्त हुआ। स्वराज्य मंत्र का उच्चारण सन् १९०६ में हुआ और सन् १९४७ में स्वराज्य मिला। गांधीजी ने सन् १९२१ में एक साल में स्वराज्य की बात की थी। उसके २६ साल के बाद स्वराज्य मिला। साकार होने में समय लगता है पर सगुण होने में तो समय लगता ही है। यही वास्तव में समय है। बाकी ईश्वर के हाथ में जो काम है उस तरह गुण प्रकट होगा। सगुण प्रकट होने के बाद साक्षात्कार होता है यही काम करेगा। सगुण ही काम की प्रेरणा देगा और हम गन्तव्य स्थान पर पहुँचेंगे। इसके लिए हमें सतत प्रयत्न करना चाहिए। हमें जो सगुण का दर्शन हुआ है भास हुआ है। सर्वोदय का जो गुण है उसने सज्जनों का ध्यान खींचा है। इसे हम सगुण दर्शन कहते हैं। इसके बाद सर्वसामान्य जन इसे उठायेंगे, उसके बाद विरोधी विचारवाले प्रतिपक्षियों को यह विचार

खैंचेगा। पहले सज्जन लोग, फिर सर्वसामान्य जन, बाद में प्रतिपक्ष के लोग। इस तरह त्रिविध प्रक्रिया हो गयी तो काम समाप्त। सज्जनों का आकर्षण हुआ यह उसका आरम्भ है। हिन्दुस्तानभर में जो सौजन्य है, उसे सर्वोदय मान्य हुआ। फिर वह सौजन्य किसी भी पक्ष में हो उनकी विचारधाराएँ कितनी भी भिन्न हों पर सज्जनों पर उसका असर हुआ है। जितना सौजन्य यहाँ भी हो सर्वोदय ने उसका ध्यान आकर्षित किया है। उतना हुआ, इसलिए यह मुकाम हमने प्राप्त किया है, ऐसा मैं मानता हूँ।

सज्जनों पर असर हुआ

परमेश्वर की कृपा से बापू के बाद इस साल में सर्वोदय ने सज्जनों के हृदय पर असर किया। इसके आगे सर्वसामान्य लोगों पर असर होगा। पहले विचार पर प्रभाव होता है, फिर भावना पर होता है और पीछे जीवन पर होता है। अब वह हमें करना है। वह निस्संशय होगा। सन् १९५७ के अन्त तक जहाँ-जहाँ सज्जन हैं उनके दिल पर असर होगा ऐसा हमने माना था और वह हो गया है।

लोग इसे आन्दोलन कहते हैं लेकिन मैं इसे आरोहण मानता हूँ। आरोहण में ऊपर ऊपर चढ़ना है। इस आरोहण की प्रगति को मापने का नाप क्या है? प्रथम नाप सज्जनों के हृदय में प्रवेश पाना। दूसरा नाप सर्वसामान्य पर असर पड़ना। वे ही इस आन्दोलन को उठावें। यह बात अभी तक पूर नहीं है, होने को जारी है। पर होने में कितना समय लगेगा यह अपने पुरुषार्थ पर है। यह आपने किया और आपका काम बन गया तो फिर आप प्रतिपक्ष पर उसका सीधा प्रहार कर सकते हैं, फिर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हम असर डाल सकते हैं। उसमें प्रवेश तब होगा जब सर्वसामान्य जनता पर असर होगा।

जालापुर (बेलगाँव)
१२ १ ५८

यहाँ कार्यकर्ता सतत निष्ठा से काम करते हैं। क्या क्रांति नहीं होगी तो क्या होगा? उत्क्रांति के समान क्रांति धीरे धीरे नहीं होती, इसलिए वह दीख नहीं पड़ती। क्रांति का दर्शन अचानक होता है। बालक का जन्म हुआ, यह क्रांति है। जीवनभर उसका पोषण होता रहता है, यह उत्क्रांति है—विकास है। फिर वह मर जाता है—यह क्रांति है। क्रांति में एकदम परिवर्तन होता है। जन्म लिया याने क्या हुआ? अव्यक्त में से व्यक्त में आ गया। उसके पहले गर्भावस्था में विकास होता ही रहता था, पर वह दिखता नहीं था। जन्म में साकार मूर्ति का दर्शन होता है, यह क्रांति है। फिर धीरे धीरे वृद्धि होती है। होते होते वह बूढ़ा बनता है। बूढ़े का चेहरा और लड़के का चेहरा पास में रखेंगे, तो पता ही नहीं चलेगा कि दोनों एक ही हैं—इतना अन्तर पड़ता है। फिर भी यह क्रांति नहीं है। हमारी आँखों के सामने फर्क हो रहा है। लेकिन मृत्यु हो गयी तो क्रांति हो गयी। याने एकदम व्यक्त में से अव्यक्त में चला गया। मृत्यु के पहले जो शरीर अग्नि का जरा भी स्पर्श सहन नहीं करता, उसे मरने के बाद जला भी दो तो वह बोलता नहीं—यह क्रांति है। इसलिए हमारे कार्यकर्ताओं में जो मानसिक परिवर्तन हुआ है, उसे देखकर हम यह कह सकते हैं कि क्रांति हो चुकी है।

कार्यकर्ताओं के पोषण के लिए कोई योजना बने ?

इन कार्यकर्ताओं के लिए आप लोगों ने कुछ योजना बनायी है? क्या खायेंगे? क्या पीयेंगे? इनके बाल-बच्चों का क्या होगा? इनकी पत्नी का क्या होगा? ये जिस गाँव में हैं, वहाँ के लोग सिखाते जरूर हैं, लेकिन इनके परिवार का क्या होता होगा? बाल बच्चों का क्या होता होगा? इतना लापरवाह समाज है। यह समाज के लिए शोभादायक बात नहीं है। कार्यकर्ता परवाह ही

नहीं करते यह उनके लिए शोभादायक बात है। मान लीजिये कि काम करते करते कार्यकर्ता मर गया तो उसके मरने के बाद लोग उसकी जयजयकार करेंगे। वह महापुरुष था—ऐसा कहेंगे। लेकिन वह जब तक जीवित है, तब तक उसके लिए कोई योजना की दृष्टि ही नहीं है। यह समाज का दोष नहीं है। समाज निष्ठुर नहीं है। पर समाज के सामने ये बातें रखनी चाहिए। ऐसे कार्यकर्ताओं के पोषण के लिए समाज कुछ नहीं करेगा ऐसी बात नहीं है।

आज देश की क्या हालत है! जो भी सरकारी मदद से सेवा करना चाहें, उनके लिए अनुकूलता है। उनके हाथ से समाज की सेवा हो सकती है, तो सरकारी मदद भी मिल सकती है। हमारे ये कार्यकर्ता कैसे हैं! ये जनशक्ति निर्माण करना चाहते हैं। ये अगर नौकरी करना चाहें, तो अच्छी सरकारी नौकरी मिल सकती है, क्योंकि ये कार्यकर्ता तरह-तरह की जानकारी रखते हैं। वह सारा काम छोड़कर ये जन शक्ति निर्माण करने में लगे हैं। इसलिए इनके योगक्षेम का काम जनों को उठाना चाहिए। सभी अपने घर में एक-एक सर्वोदय पात्र रखें।

कार्यकर्ता बिना कोई चिन्ता किये सिर्फ भगवान् पर भरोसा रखकर समाज की सेवा कर रहे हैं। इस जमाने में, जब कि सभी अपने स्वार्थ साधन में लग गये हैं, यह कितनी बड़ी बात है। ऐसे ही कार्यकर्ताओं से जन शक्ति का निर्माण होता है।

चामराजनगर (मैसूर)
११-१-५८

भूदान संसार की सबसे बड़ी क्रान्ति : ५० :

हरिहर का नाम शंकराचार्य के साथ जुड़ा हुआ है। यहाँ का मठ आद्य शंकराचार्य का नहीं है, उनके बाद का है परन्तु परंपरा सम्बन्धित है। आज से लगभग बारह सौ वर्ष पहले शंकराचार्य समस्त भारतवर्ष में घूमे। हमारे

मन में सदा उनका स्मरण होता रहता है। वे परिव्राजक थे। उनके अन्दर संपूर्ण भारतीयता मूर्तिमती हो गयी थी। भारत के एक सिरे पर उनका जन्म हुआ और एकदम दूसरे सिरे पर देह छूटी। उन्होंने अपने समय की राष्ट्रभाषा संस्कृत में लिखा और भारत के चार कोनों पर चार आश्रम स्थापन किये। उनकी यह आश्रम परंपरा आज तक अखण्ड चली आ रही है। यह सच है कि किसी समय उनके अन्दर जो तेजस्विता थी वह आज नहीं रही फिर भी आज समाज पर उनका कुछ प्रभाव तो है ही। ऐसे महापुरुषों का प्रभाव केवल उनके शिष्यों या जो उनका नाम लेते हैं, केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रहता। भगवान् बुद्ध के बाद यदि समाज पर किसीका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा हो, तो वे शंकराचार्य ही हैं। इसका कारण क्या है, इस पर सबको चिंतन करना चाहिए।

शंकराचार्य की प्रचार-पद्धति

भूदान ग्रामदान की यात्रा में शंकराचार्य का चित्र हमेशा हमारी आँखों के सामने रहता है। उनके पास एक ऐसी कीमिया थी कि जिस किसीसे वे मिलते, उनके हृदय को बदल देते थे। हृदय परिवर्तन की एक प्रक्रिया उन्होंने ढूँढ़ी उसे उन्होंने अपने ग्रन्थों में लिख दिया है। 'गीता भाष्य' नाम का उनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसमें उन्होंने यह प्रश्न उपस्थित किया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से गीता क्यों कही ? इसका उत्तर भी दे दिया है। अर्जुन अपने समय का अत्यन्त गुणवान् पुरुष था। यदि धर्म विचार गुणवान् मनुष्य से कहा जाय, तो उसके द्वारा वह फैलता है। जिस धर्म को गुणाधिक मनुष्य ग्रहण करते हैं और उस पर आचरण करते हैं वह अवश्य ही फैलता है। अर्जुन गुणवान् थे और सुने हुए उपदेश पर अमल करने की उनके अन्दर शक्ति थी। इसलिए भगवान् ने उन्हें धर्म प्रचार के साधन के रूप में चुन लिया। इस चुनाव के द्वारा शंकर ने अपनी प्रचार पद्धति दिखा दी। उनके समय में सब लोग संस्कृत नहीं समझते थे। कुछ बड़े बड़े लोग समझते थे। इसलिए जहाँ-जहाँ भी धार्मिक और गुणवान् मनुष्य हों उनसे मिलना, उनके साथ धर्म चर्चा करना और उनके विचारों को बदलकर उनके द्वारा धर्म का प्रचार करना यह थी उनकी हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया।

संसार में कुछ गुणवान और आचरण-सम्पन्न मनुष्य होते हैं। उनके विचारों में परिवर्तन कर दिया जाय, तो हृदय परिवर्तन करने के झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं। जिनका हृदय पहले से ही अच्छा है, उन्हें अपने विचार समझा दिये जायँ। आजकल हम क्या करते हैं? हम दुष्टों का हृदय-परिवर्तन करनेवाले बन जाते हैं। अर्थात् हम मन में ही अपने-आपको साधु और सत्पुरुष बना लेते हैं। सत्पुरुष बनने के लिए हमें खुद कुछ भी नहीं करना पड़ता। केवल दूसरों को दुष्ट समझ लिया और उनका हृदय परिवर्तन करने के काम में लग गये। शंकराचार्य ने इस तरह का बेकार अहंकार धारण नहीं किया। वे जानते थे कि संसार में सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के लोग हैं। वे सात्त्विक लोगों को ढूँढ़कर उनसे बात चर्चा करते। उन्होंने विचार को प्रकट कर दिया कि बस, इसके आगे काम विचार ग्रहण करनेवालों का अपना है। इस प्रकार शंकराचार्य ने बत्तीस वर्ष की छोटी-सी उम्र में तत्कालीन समाज का विचारपरिवर्तन करा दिया। जब समाज में विचार पर निष्ठा नहीं थी, नाना प्रकार की कल्पनाओं से लोगों का मन व्याकुल था, तब उन्होंने एक निष्ठा प्रदान की। उनके बाद रामानुज आये, मध्व आये। उनका काम सरल हो गया, क्योंकि निष्ठा निर्माण करने का काम पहले ही हो चुका था। निष्ठा के आधार पर नये नये विचार समझाना आसान हो जाता है। फिर किसीने कहा कि शंकराचार्य ने जो निष्ठा जगायी, उसके अन्दर भक्ति की कमी रह गयी। समाज को अधिक भक्ति की जरूरत है। अच्छा तो उसमें जरूरत के लायक भक्ति और मिला दीजिये। कोई कहने लगा कि कर्मयोग समझाने की कमी रह गयी। ठीक है उसका समन्वय कर दें। यह सब आगे का काम है। परन्तु बुनियादी काम तो यह था कि जो समाज बड़ा ही जीवन-निष्ठाहीन था, उसमें निष्ठा दी जाय। यह कठिन काम था।

विचार-परिवर्तन पर जोर

जिनका हृदय शुद्ध है, उनके पास जाना और उन्हें निष्ठा प्रदान करना हृदय परिवर्तन करने के लिए शंकराचार्य की यह सर्वोत्तम प्रक्रिया है। मेरी भी निष्ठा शंकराचार्य की इसी प्रक्रिया पर बैठ गयी। जो शक्ति विचारों में होती है, वह

अन्दर हैं। एक एक सूत्र पर अनेकानेक भाष्य हैं। प्रत्येक भाष्यकार अपना अपना भाव कहता है। वे सब हिन्दू धर्म माने जाते हैं। जिसकी बुद्धि जिसे ग्रहण करे, वह उसीको माने। इसलिए विचार-प्रचार की जो पद्धति धर्मशास्त्रों में रही वह सबके लिए अनुकरणीय है। उसकी इस पद्धति के कारण हिन्दू धर्म में कहीं संघर्ष नहीं रह पाया। यूरोप में विज्ञान के आविष्कारों का धर्म के साथ संघर्ष पैदा हो गया। विज्ञान सृष्टिविषयक नयी नयी बातें लाकर समाज के सामने उपस्थित करने लगा तब धर्म कहने लगा कि यह बाइबल के विरुद्ध है। वैज्ञानिक कहते कि सृष्टि करोड़ों वर्ष पुरानी है, तो धर्म कहता कि यह छह करोड़ वर्ष पुरानी है। इस तरह विरोध चल रहा था। हाल ही में समाचार पत्रों में एक मजेदार खबर हमने पढ़ी। विज्ञान की कोशिश अब दूसरे ग्रहों में मनुष्य के पहुँचने की सम्भावनाएँ पैदा हो गयी हैं। वहाँ सम्भवतः उन्हें मनुष्य अथवा दूसरी किसी योनि के लोग मिलें। पोप ने जाहिर किया है कि मंगल या शुक्र पर अथवा अन्य किसी ग्रह उपग्रह पर ऐसे प्राणी मिलें तो पोप को उस पर कोई आपत्ति नहीं होगी। कितना हँसी आने लायक बात है। इसमें पोप के आपत्ति उठाने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है? किसी समय ऐसा होता था। गैलीलियो (एक वैज्ञानिक) कहता था कि पृथ्वी घूमती है और धर्मशास्त्री कहते थे कि यहाँ पृथ्वी यह स्थिर है। बस, इस प्रकार हो गया विज्ञान और धर्मशास्त्र के बीच झगड़ा शुरू। धर्म के हाथों में राजसत्ता थी। उसने गैलीलियो से कहा कि कहो कि पृथ्वी स्थिर है, घूमती नहीं। उसने नहीं कहा तो उसे बहुत कष्ट दिये। आखिर तंग आकर उसने एक दिन कहा : “मैं बहुत चाहता हूँ कि वह न घूमे, क्योंकि उसके घूमने के कारण मुझे इतने कष्ट सहने पड़ रहे हैं। परन्तु मैं क्या करूँ, वह तो घूम ही रही है।” वैज्ञानिकों पर ऐसे अत्याचार भारत में भी हो सकते थे। परन्तु नहीं हुए। इसका श्रेय धर्मशास्त्र को है। उन्होंने लिखा : 'यदि श्रुतिशतमपि अग्निरनुष्ण इति ब्रूयात् अप्रामाण्यमुपैति।'—यदि सौ सौ वेद आकर कहें कि अग्नि गरम नहीं होती तो उसे कोई नहीं मानेगा क्योंकि वह विज्ञान का प्रत्यक्ष विषय है। इससे श्रुति विरोध—धर्म विरोध हो ही

नहीं सकता। यह शंकराचार्य का प्रताप है। इसीलिए यहाँ विचार स्वातन्त्र्य और बुद्धि स्वातंत्र्य रह सका।

भूदान-ग्रामदान के लिए भी शंकर-पद्धति श्रेयस्कर

भूदान और ग्रामदान के लिए पैदल घूमते हुए मैं सोचता रहता हूँ कि शंकराचार्य की यह दृष्टि इस काम में मेरी मदद कर सकती है या नहीं। मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मुझे भी हृदय परिवर्तन के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। विचार-परिवर्तन से ही काम लूँगा तो अधिक-से-अधिक सच्ची और स्थायी सफलता मिलेगी। अपने यहाँ हम पाठशालाओं में देखते हैं कि शिक्षक अपने पास पुस्तकें भी रखते हैं और एक डण्डा भी। कहते हैं डण्डे से विद्या दौड़ दौड़कर आती है : छड़ी लागे छम-छम विद्या आवे घम घम। आज एक आदमी ने मुझसे कहा : 'बाबा आप पर क्या पागलपन सवार हुआ है जो इस झंझट में पड़े हैं! सरकार पर जोर डालकर कानून बनवा लीजिये, तो सब आसानी से हो जायगा। बुढ़ापे में इतनी तकलीफ क्यों कर रहे हैं!" उसकी समझ में यह बात नहीं आयी कि कहीं से भी और किसी भी तरह जमीन ले-छिनाकर बाँट दी जाय यह सर्वोदय की दृष्टि नहीं है। सर्वोदय की स्थापना के लिए विचार बदलने की जरूरत है। व्यक्ति के ममत्व के स्थान पर समाज का ममत्व हमें स्थापित करना है। यह विचारवानों के विचारों को बदलने का प्रश्न है। एक बार विचार परिवर्तन हुआ कि फिर समाज उसके अनुसार अपने आप आचरण करने लग जायगा। इसलिए भूदान और ग्रामदान के लिए भी शंकराचार्य की प्रक्रिया ही काम देगी।

मैं शंकराचार्य के चरण चिह्नों पर चलनेवाला आदमी हूँ। उनके ग्रंथों का अध्ययन करता हूँ। इस कारण लोगों को लगता है कि कहीं मैंने हमेशा लोगों को समझाते ही रहने का व्रत तो नहीं ले लिया है। हमारे भूदान कार्यकर्ता पूछते हैं कि हमने '५७ तक तो त्याग किया। अब क्या करेंगे, तब तक हमसे त्याग ही त्याग करवाते रहेंगे! मैं उनसे कहता हूँ कि मेरे पास विचार समझाने के सिवा दूसरा कोई हथियार नहीं है। इतनी ही बात है कि एक तरह से समझाने पर

काम नहीं करता तो दूसरे दल का सदस्य बैठा हूँ । यह अगर आप सीख लेंगे, तो हमारे देश का बैभव बहुत बढ़ जायगा ।

विचारों का आयात-निर्यात आवश्यक

आज ही मेरा जन्म और यही जन्म भी है । इस स्थान के बल पर मैं हर प्रकार के अज्ञान को परास्त करूँगा । यह शंकराचार्य की प्रतिज्ञा थी । वही हिम्मत आज हमारे भारत को भी हो । भूदान के कार्य में एक नवीन प्रक्रिया का जन्म हो रहा है । केवल विचार परिवर्तन के बल पर समाज का परिवर्तन करने का यह प्रयोग है । अगर यह सफल हो गया तो बहुत अच्छा होगा । इसीलिए आप हमारा आशीर्वाद दे रहा है कि यह प्रयोग सफल हो । क्योंकि इसके द्वारा विचार परिवर्तन की एक नवीन प्रक्रिया संसार के सामने आ रही है ।

सर्वोदय
१ १ ५८

भारत गो-सेवा में यूरोप से पीछे

१८१

हमारे देश में गाय की सेवा बहुत कम हो रही है । इसकी तुलना में दूसरे देशों में बहुत अधिक सेवा होती है । बूढ़ी हो जाने पर भी गायों का पालन करने का रिवाज हमारे यहाँ है । यह हमारा भारतीय समाजवाद है । समाजवाद का एक तत्त्व सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य की समान रूप से रक्षा—सँभाल—की जानी चाहिए । यह भारत की विशेषता है । परन्तु अन्य प्रकार से देखा जाय तो यूरोप और अमेरिका में गाय की जितनी सेवा होती है, उतनी यहाँ नहीं होती । यूरोप में ज्यादा गाय का दूध पिया जाता है भैंस का नहीं । इस दृष्टि से देखा जाय, तो गाय की सेवा का शास्त्र पश्चिम में अधिक विकसित हुआ है । यह हमें सीखना चाहिए । अभी आपने पू. बौरे महाराज का भाषण सुना । उनकी उम्र ८२ वर्ष की है । गुरु आनन्द से उन्होंने गो-सेवा के काम को अपने हाथ में लिया है । मैंने उनसे पूछा कि आप यह काम कितने वर्षों से कर रहे हैं ? वे बोले :

करीब साठ बरस से। इस एक काम में परिपूर्ण तन्मयता के साथ उन्होंने जीवन लगा दिया।

समाज-सेवा के प्रति उदासीनता क्यों?

बापू महाराज ने जो सेवा की उसमें भगवान् की सेवा की दृष्टि थी। यह उनकी विशिष्टता है। भगवद्गीता कहती है कि हम जो भी काम करें उसे भगवान् को अर्पित कर दें। इधर कुल मिलाकर समाज सेवा भारत में कम ही हुई है। स्वराज्य मिलने के बाद तो उस तरफ से हम बहुत ही उदासीन हो गये हैं। हर बात सरकार पर ही छोड़ी जा रही है। यही नहीं, हम समझते हैं कि समाज-सेवा भी सरकार का ही काम है। हमें अपनी तरफ से कुछ भी करने की जरूरत नहीं। इस कारण सरकार के आश्रय में रहने की हमें आदत हो गयी है। इसलिए समाज सेवा की चिन्ता और ध्यान हममें कम है। ईश्वरार्पण बुद्धि से समाज सेवा करना तो और भी दूर की बात है। सकाम सेवा और निष्काम सेवा में यही बहुत बड़ा अन्तर है। जिस सेवा की जड़ में किसी प्रकार की कामना होती है, वह ईश्वरार्पण नहीं हो सकती। जो सेवा कामनारहित होती है वह ईश्वरार्पित हो सकती है। मैं यह सेवा करता हूँ इसमें आत्मसमर्पण है इतना कह देने मात्र से आत्मसमर्पण नहीं हो जाता। हम सबके अन्तःकरण में एक अंतर्यामी बैठा है। उसे सब कुछ अर्पण कर देना यह एक और ही चीज है। इस कारण परिणाम में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। यह सारा विषय गीता में बताया गया है। गीता में कहा है कि अपने काम में जो निष्काम भावना से तन्मय हो जाता है, उसे सिद्धि मिलती है। हम जब अपना कर्तव्य करते हैं, तो कर्तव्य के पालनमात्र से ईश्वर की पूजा हो जाती है। इस तरह जब कर्तव्य कर्म को ईश्वर से जोड़ देते हैं, तब सिद्धि हो जाती है। यदि हम अपने कर्म को ईश्वर के साथ नहीं जोड़ते तो भी समाज की थोड़ी-बहुत सेवा तो बनती ही है, परन्तु उस बुद्धि के बिना अपेक्षित परिणाम नहीं होता। हमारे बड़े बूढ़ों ने हमें सिखाया है कि हम संसार का जो भी काम करें, वह हमारे लिए ईश्वर हो। जनहित और आत्महित एकरूप हो जाना चाहिए।

कुछ लोग समाज की सेवा में लग जाते हैं। परन्तु आत्महित की एकदम उपेक्षा कर देते हैं। इससे अहंकार बढ़ता है, मत्सर पैदा होता है। कार्यकर्ताओं के साथ आपस में संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह जितने राग द्वेष घर में होते हैं, धीरे धीरे वे सब बड़े बड़े सेवा कार्यों में भी हो जाते हैं। एक तरफ ईश्वर से संबंध छूट जाने के कारण समाज सेवा की यह अवस्था है, दूसरी तरफ पारमार्थिक भावना का समाज सेवा से कोई संबंध नहीं होता। परमार्थ में लगे लोग ध्यान धारणा और जप ही करते हैं। उन्हें समाज सेवा से उदासीन रहना होता है। मैं उनसे पूछता हूँ कि आपका आहार आदि का सेवन चलता है या नहीं? वे कहते हैं कि चलता है, वह तो अनिवार्य है। इसके बिना मनुष्य रह नहीं सकता। मैं अपने मन में विचार करता हूँ कि पारमार्थिक साधना के लिए शरीर का पोषण अनिवार्य है, तब समाज सेवा कैसे बाधक बन जाती है? मैं ध्यान धारणा में मग्न रहता हूँ। फिर भी भूख लगने पर उसे छोड़कर भोजन के लिए चला जाता हूँ। इसमें मुझे कोई विरोध नहीं दीखता। कोई भूखा आदमी आये, तो उसे खाने के लिए कुछ देना चाहिए या नहीं? अपना ध्यान धारणा को छोड़कर शरीर धारणा का काम मैं करता हूँ। वह उसके विरुद्ध नहीं जाता ऐसा मैं मानता हूँ। फिर करुणा का काम समाज की सेवा का काम उसके विरुद्ध कैसे हो सकता है? ध्यान धारणा करने वाले मनुष्य के एकांगी काम से विकृति पैदा हो जाती है। सो क्यों? प्रत्येक कार्य का संबंध ईश्वर से जोड़ देने पर वह कार्य भी भक्तिपूर्वक भगवान् के अर्पण कर देना चाहिए। इस बात का भान न रहने के कारण विकृति दीखती है। इसलिए समाज सेवा के काम से लोग दूर रहते हैं और ध्यान धारणा एक स्वतंत्र पारमार्थिक काम बन जाता है। परन्तु ऐसा वह वास्तव में नहीं है। वह ईश्वर से जुड़ा हुआ ही होना चाहिए। अन्यथा वहाँ भी एकांगिता निर्मित हो जाती है।

समाज सेवा के काम के संबंध में जो प्रश्न लागू होता है वह ध्यान धारणा के संबंध में भी लागू होता है। वह प्रश्न क्या है? कि ध्यान धारणा

भी भगवत् अर्पण हो। यह युक्ति सध जाने पर दोनों का मूल्य एक हो जायगा। समाज-सेवा की उपेक्षा करके हम व्यक्तिगत काम में मग्न होते हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थ ही है क्योंकि उसे परमार्थ से नहीं जोड़ा गया है। इस तरह कुछ लोग एक तरफ रह जाते हैं। दूसरी तरफ समाज सेवा करनेवाले उस भूमिका की तरफ ध्यान नहीं देते। ये दो टुकड़े हो जाने के कारण भारत में परमार्थ प्राण शून्य हो गया है। न सेवकों की सेवा में प्राण है और न ध्यान धारणा में प्राण है। दोनों प्रकार के काम निष्प्राण हो गये हैं।

भूदान और ग्रामदान अत्यन्त गंभीर कार्य

भूदान और ग्रामदान का कार्य अत्यन्त गंभीर है। समाज में आज जो कुछ चल रहा है उसके यह विरुद्ध ही है। गंगा को वापस गंगोत्री ले जाने जैसा यह काम है। मैं और मेरा घर इसके सिवा दूसरा कोई विचार आज समाज में नहीं है। जितना धन अपने घर में बटोरते बने उतना बटोर लिया जाय। इस तरह की रचना आज के समाज की है। इसीलिए यह लोग ईश्वर को भी धोखा देने की फिराक में रहते हैं। कहते हैं कि हे प्रभो! पाँच सौ रुपये की हाथ की घड़ी मिल जाय तो दो पैसे का प्रसाद बाँट दूँगा। यह बात समर्थ रामदास ने एक जगह बहुत विनोद के साथ कही है। 'जगाचा जाणता सामान्य कार्यारम्भी गहबती देव'। अर्थात् भगवान् कुछ न कुछ देगा ऐसी वासना रखते हैं। कार्य के प्रारम्भ में भगवान् का नाम लेते हैं। भगवान् कुछ दे दे और फिर काम करने की जरूरत न रहे यह इच्छा रहती है। इस तरह समर्थ ने टीका की है। मतलब यह कि उनके समय से इस तरह चल रहा है। यह सनातन धर्म ही बन गया है। यह धर्म स्वभाव कितना पुराना है? वेदों में भी इसका वर्णन है। इसे कैसे तोड़ा जा सकता है? हमें कुछ ईश्वरीय आधार की जरूरत है या नहीं? हम अगर इस जरूरत को नहीं पहचानेंगे, तो हमारा काम कैसे चल सकेगा? इसलिए प्रत्येक कृति को ईश्वर के साथ जोड़ देना चाहिए। उसके साथ हम बातचीत कर सकें उससे प्रश्न पूछ सकें उससे जवाब प्राप्त कर सकें और उसके अनुसार आचरण करने की हिम्मत भी हो यह सब होने की जरूरत है।

यह बहुत बड़ी प्रक्रिया है। यह मालकियत की बात नहीं है। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान अनुभव पर आधृत है, उसी प्रकार यह भी अनुभूति पर आधृत है। इसलिए प्रत्येक कार्यकर्ता अपने काम को परमात्मा के साथ जोड़ दे।

भगवद् भक्ति से संयम स्वाभाविक

हम खाते पीते और सोते हैं। खाते समय क्या हम यह विचार करते हैं कि यह अन्न भगवान् को अर्पण कर रहे हैं? अगर मन में यह भाव है, तो भोजन भी एक महायज्ञ बन जाता है। तब ऐसी वैसी चीजें पेट में नहीं जा सकेंगी। जीभ के चाबुक नहीं सहेंगे। संयम एक स्वाभाविक वस्तु बन जायगा, क्योंकि जीभ पर साक्षात् भगवान् को ही हमने बैठा दिया है। वह भोजन उसीको अर्पण होगा। इसलिए भोग बच जायगा। जीभ तो एक औजार मात्र है। तुकाराम ने कहा है न! "विठ्ठल के नाम जो कुछ मिल गया, उसमें स्वाद पैदा हो गया।" इतना मधुर भाव रखनेवाला महात्मा संसार में दूसरा है कहाँ! दूसरे महात्मा भी हैं, परन्तु उनका स्थान तक नहीं आयेगा। यह दृष्टि नित्य के काम में आ जानी चाहिए। सोने के लिए जायें तो यह नहीं कहें कि हम बिछौने पर लेट रहे हैं। ऐसा मालूम हो कि हम भगवान् की गोद में ही सो रहे हैं। फिर बुरे-बुरे सपने कैसे आयेंगे? ब्रह्मचारी कहाँ पतन हो रहा है। इस तरह अपने सारे काम हम भगवान् में मिला दें। यह एक भाव यहाँ महाराज के कारण मेरे मुख से निकल गया। उनके बहुत उपकार हैं। यहाँ आकर आज उन्होंने एक बड़ी महत्त्व की बात कही कि अब शेष जीवन इसी काम में वे लगायेंगे, क्योंकि गो-सेवा, धर्म संरक्षण, भजन, उपासना, त्याग, सब कुछ इसमें आ जाता है। उन्होंने यह भी कहा, "उसके बदले मुझे कुछ नहीं चाहिए।" मेरे लिए उनका आशीर्वाद बस है। हम ऐसा इसके बल पर बहुत काम कर सकते हैं।

कम्बागाव (बेलगाँव)
११-६-५८

उप-शीर्षकों का अनुक्रम